मासिक समाचारपत्र • पूर्णांक 14 • वर्ष 2 • अंक 5–6 • अगस्त–सितम्बर 2012 • पाँच रुपये • सोलह पृष्ठ

मज़दूर बिगुल

मज़दूरों के ख़िलाफ़ एकजुट हैं पूँजी और सत्ता की सारी ताक़तें

सरकारी शह से मारुति सुज़ुकी ने 2000 मज़दूरों को निकाला

इस हमले का मुँहतोड़ जवाब देने के लिए व्यापक मज़दूर एकता क़ायम करनी होगी

• सम्पादक मण्डल

पिछली 18 जुलाई को देश की सबसे बड़ी कार कम्पनी मारुति सुज़ुकी के मानेसर स्थित कारख़ाने में हुई हिंसा और उसके बाद हुई घटनाओं ने देश के पूँजीवादी विकास के हिंस्र मज़दूर विरोधी चेहरे को एकदम नंगा कर दिया है। कारख़ाने में भड़की हिंसा और उसमें एक मैनेजर की मौत के असली कारणों पर पर्दा डालने और मज़दूरों को ही अपराधी व हत्यारा साबित करने की हर कोशिश के बावजूद अब यह बात साफ़ हो वुकी है कि इस घटना के लिए वास्तविक दोषी खुद कम्पनी का मैनेजमेण्ट है। मगर इसकी गाज पूरी तरह मज़दूरों पर गिरी है। सैकड़ों मज़दूरों को बेरोज़गार कर दिया गया है, करीब 150 मज़दूर जेल में हैं, अनेक अब भी छिपते फिर रहे हैं, उनकी यूनियन ख़त्म कर दी गयी है और अब कारख़ाने में रोमन गुलामों की तरह हथियारबन्द पहरेदारों के आतंक के तले काम कराने की शुरुआत हो चुकी है।

मारुति सुज़ुकी जैसी घटना न देश में पहली बार हुई है और न ही यह आख़िरी होगी। न केवल पूरे राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र (एनसीआर) में, बल्कि पूरे देश में हर तरह के अधिकारों से वंचित मज़दूर जिस तरह हड्डियाँ निचोड़ डालने वाले शोषण और भयानक दमघोंटू माहौल में काम करने और जीने को मजबूर कर दिये गये हैं, ऐसे में इस प्रकार के उग्र विरोध की घटनाएँ कहीं भी और कभी भी हो सकती हैं। इसीलिए इन घटनाओं के सभी पहलुओं को अच्छी तरह जानना–समझना और इनके अनुभव से अपने लिए ज़रूरी सबक़ निकालना हर जागरूक मज़दूर के लिए, और सभी मज़दूर संगठन–कर्ताओं के लिए बेहद महत्वपूर्ण है।

करीब एक महीने की तालाबन्दी के बाद 21 अगस्त को जब कारख़ाना दुबारा खुला तो लगभग 2000 मज़दूरों को काम से बाहर किया जा चुका था। लगभग 1000 स्थायी मज़दूरों में से 500 को सीधे बर्ख़ास्त कर दिया गया और 2000 से अधिक ठेका मज़दूरों को भी काम पर नहीं लिया गया। कहा गया है कि इनमें से कुछ को स्थायी तौर पर भर्ती किया जायेगा लेकिन ज़्यादातर को निकाला जाना तय है। हिंसा का बहाना लेकर मैनेजमेण्ट ने फैक्ट्री के भीतर एकदम फ़ौजी अनुशासन लागू कर दिया है जिसमें हरियाणा सरकार उसकी पूरी मदद कर रही है। रैपिड एक्शन फोर्स के 600–700 जवान हर समय फैक्ट्री के भीतर तैनात हैं और कम्पनी अलग से हथियारबन्द पूर्व सैनिकों की एक फ़ोर्स खड़ी कर रही है जो मज़दूरों पर निगरानी करेगी। घटना के तुरन्त बाद ही मैनेजमेण्ट और उसके भोंपू का काम करने वाले बुर्जुआ मीडिया ने सभी मज़दूरों को हिंसा पर उतारू भीड़ और अपराधियों के रूप में पेश करना शुरू कर दिया था। कम्पनी राज्य सरकार पर ज़्यादा से ज़्यादा मज़दूरों को गिरफ़्तार करने के लिए दबाव डाल रही थी और ऐसा न होने पर अपना कारख़ाना हरियाणा से बाहर ले जाने की धमकी दे रही थी। हरियाणा पुलिस ने चन्द दिनों के भीतर ही 150 से भी ज़्यादा मज़दूरों को गिरफ़्तार कर लिया था जिनमें से ज़्यादातर अब भी जेल में हैं। उन पर हत्या, हत्या का प्रयास, तोड़फोड़ जैसे संगीन जुर्मों की धाराएँ लगायी गयी हैं। मुक़दमों की पेशी के लिए अदालत लाये जाने के समय मज़दूरों को देखकर साफ़ ज़ाहिर होता है कि उन्हें बुरी तरह मारा–पीटा और यातनाएँ दी गयी हैं।

घटना के बाद शासक वर्गों के विभिन्न धड़ों की प्रतिक्रियाएँ उनके भीतर मज़दूरों के प्रति गहरी नफ़रत को साफ़ कर देती हैं। विप्रो कम्पनी के मालिक और "समाजसेवी" के रूप में विख्यात अज़ीम प्रेमजी ने बयान दिया कि सरकार को मज़दूरों के साथ "निर्ममतापूर्वक" निपटना चाहिए। उद्योगपतियों की लगभग सभी संस्थाओं ने भी कमोबेश इसी तरह की भाषा में मज़दूरों को सबक़ सिखाने की माँग की। पूँजीवादी मीडिया का बड़ा हिस्सा, ख़ासकर इलेक्ट्रानिक मीडिया तो पहले से ही मज़दूरों को अपराधी घोषित करने में जुटा हुआ था। मानेसर के आसपास के गाँवों की तथाकथित महापंचायत में कम्पनी का भरपूर समर्थन करते हुए ऐलान किया गया कि इस इलाक़े में "लाल झण्डे वालों" का प्रवेश बन्द कर दिया जायेगा। स्पष्ट है कि इस पंचायत में इन गाँवों के आम मेहनतकश नहीं बल्कि कुलकों–फार्मरों के प्रतिनिधि और उन नवधनाढ्यों की बड़ी जमात शामिल थी जिन्हें अमीर बनाने में मारुति सुज़ुकी जैसी कम्पनियों की बड़ी भूमिका रही है। ये वे लोग हैं जो

(पेज 13 पर जारी)

भारतीय उपमहाद्वीप में साम्प्रदायिक उभार और मज़दूर वर्ग

हाल के दिनों में भारत सहित समूचे दक्षिण एशिया में कई ऐसी घटनायें घटीं जिनकी वजह से धार्मिक कट्टरपन्थ की राजनीति में प्राण–संचार सा हो गया गया है। असम के बोडोलैण्ड क्षेत्र में फैली बर्बर किस्म की जनजातीय और साम्प्रदायिक हिंसा अभी थमी भी नहीं थी कि मुम्बई के आज़ाद मैदान में इस्लामिक कट्टरपंथियों ने बोडोलैण्ड में मुसलमानों के ख़िलाफ़ दंगों और और म्यांमार (बर्मा) में रोहिंग्या मुस्लिमों के कथित नरसंहार के विरोध में प्रदर्शन के दौरान जबर्दस्त उत्पात मचाया। इसके बाद दक्षिण भारत के कुछ शहरों खासकर बंगलूर, चेन्नई और हैदराबाद में 'एसएमएस' और 'सोशल मीडिया' के ज़रिये फैलायी गयी अफ़वाहों द्वारा पूर्वोत्तर के राज्यों के प्रवासी नागरिकों को डराये–धमकाने जाने के बाद एक अभूतपूर्व स्थिति देखने को आयी जब हज़ारों की संख्या में प्रवासी नागरिक ख़ौफ़ में आकर आनन–फानन में अपने घरों की तरफ रवाना हो गये। उधर पाकिस्तान में भी अल्पसंख्यक हिन्दुओं के उत्पीड़न की कई ख़बरें मीडिया में छायी रहीं और यह देखने में आया कि इधर कुछ अर्से से हिन्दुओं के पाकिस्तान से भारत की ओर पलायन की प्रक्रिया ने रफ़्तार पकड़ ली है। इस समूचे घटनाक्रम से भारत के हिन्दू कट्टरपंथियों की भी बाँछें खिल उठीं हैं और उन्होंने भी पारम्परिक और आधुनिक माध्यमों से भारत में अल्पसंख्यकों के ख़िलाफ़ विषवमन करने के संगठित अफ़वाह तंत्र में जबर्दस्त तेजी ला दी है और पूरे देश या यूँ कहें कि समूचे भारतीय उपमहाद्वीप में साम्प्रदायिक ध्रुवीकरण की एक नयी लहर सी चल पड़ी है।इसके अलावा देश के भीतर क्षेत्रीय फ़ासीवादी ताकतों के उभार के भी स्पष्ट संकेत मिले जब राज ठाकरे के नेतृत्व वाली महाराष्ट्र नवनिर्माण सेना के गुंडों ने एक ओर आज़ाद मैदान की घटना के विरोध में बिना अनुमति के रैली निकाल कर हिन्दुत्व की राजनीति की ओर झुकाव को जगजाहिर किया। वहीं दूसरी ओर मुम्बई में उत्तर भारतीयों और खासकर बिहारियों के ख़िलाफ़ ज़हर उगलने के पुराने कीर्तिमान तोड़कर उनको अपने ही देश में घुसपैठिया क़रार दिया। तमिलनाडु में भी तमिल अन्धराष्ट्रवादी भावनाओं को हवा देने के मक़सद से जयललिता की अन्ना द्रमुक सरकार ने श्रीलंका से आये सिंघलियों के ख़िलाफ़ नफ़रत फैलाने में सरकारी मशीनरी तक का इस्तेमाल करने से भी परहेज़ नहीं किया। ये सभी घटनायें भले ही अलग–अलग क्षेत्रों में और अलग–अलग तात्कालिक कारणों से घटित हुई हों लेकिन अगर ग़ौर से देखा जाये तो ये एक दूसरी से जुड़ी हुई हैं। यह अनायास नहीं है कि धार्मिक कट्टरपन्थ और अन्धराष्ट्रवाद की बयार ऐसे समय पर हिलोरे मार रही है जब पूँजीवादी आर्थिक संकट की लहर अमेरिका और यूरोप से होते हुए भारतीय उपमहाद्वीप तक आ पहुँची है।

जैसा कि अमूमन देखने में आया

(पेज 16 पर जारी)

माँगपत्रक शिक्षणमाला–12 : बाल मज़दूरी और जबरिया मज़दूरी के हर रूप का ख़ात्मा मज़दूर आन्दोलन की एक अहम माँग है 7

पहले मज़दूर राज, पेरिस कम्यून की चित्र कथा – सर्वहारा अधिनायकत्व का पहला प्रयोग 8-9–10

अपनी तार्किक परिणति तक पहुँच गये अण्णा–रामदेव के आन्दोलन 11

बजा बिगुल मेहनतकश जाग, चिंगारी से लगेगी आग!

आपस की बात

दिहाड़ी मज़दूरों की जिन्दगी!

मैं एक भवन निर्माण मज़दूर हूँ। मैं बिहार प्रदेश से रोजी-रोटी के लिए दिल्ली आया हूँ। यहाँ मुश्किल से 30 दिनों में 20 दिन ही काम मिल पाता है। जिसमें भी काम करने के बाद पैसे मिलने की कोई गारण्टी नहीं होती है। कहीं मिल भी जाते हैं तो कहीं दिहाड़ी भी मार ली जाती है। कोई-कोई मालिक तो जबरन पूरा काम करवाकर (ज़मींदारी समय के समान) ही पैसे देते हैं और अधिक समय तक काम करने पर उसका अलग से मज़दूरी भी नहीं देते हैं। कई जगह मालिक पैसे के लिए इतना दौड़ाते हैं कि हमें लाचार होकर अपनी दिहाड़ी ही छोड़नी पड़ती है। यहाँ करावल नगर में लेबर चौक भी लगता है। जहाँ न बैठने की जगह है न पानी पीने की। चौक से जबरन कुछ मालिक काम पर ले जाते हैं नहीं जाने पर पिटाई भी कर देते हैं। दूसरी तरफ दिहाड़ी मज़दूरों की बदतर हालात सिर्फ काम की जगह नहीं बल्कि उनकी रहने की जगह पर भी है जहाँ हम तंग कमरे में रहते हैं। हमारे बच्चे मुश्किल से ही पढ़ने-लिखने जा पाते हैं। अगर हमारे परिवार में कोई बीमार हो जाता हैं तो हमारे सामने सस्ते इलाज के लिए झोलाछाप डाक्टर के सिवा कोई नहीं है और हमारी बीमार का भी कारण पीने का गन्दा पानी और नालियों में बजबजाते मच्छर हैं। हमें पेट काटकर ही जीना पड़ता है और आसपास भी दिहाड़ी मज़दूरों की ऐसी ही स्थिति दिखती है।

– कपिल कुमार
करावल नगर, दिल्ली

मँहगाई से खुश होते मंत्री जी...!

देश की ''तथाकथित'' आज़ादी में यूपीए-2 का शासनकाल सबसे बड़े घोटाले और रिकार्ड तोड़ मँहगाई का रहा है, जिसमें खाने-पीने से लेकर पेट्रोल-डीजल, बिजली के दामों में बेतहाशा वृद्धि ने ग़रीब आबादी से जीने का हक़ भी छीन लिया है। लेकिन इन सब कारगुज़ारियो के बावजूद यूपीए-2 के केन्द्रीय इस्पात मंत्री बेनी प्रसाद का कहना है कि मँहगाई बढ़ने से उन्हें इसलिए खुशी मिलती है क्योंकि इससे किसानों को लाभ मिलता है लेकिन बेनी प्रसाद जी ये बताना भूल गये कि इस लाभ की मलाई तो सिर्फ़ धनी किसानों और पूँजीवादी फार्मरों को मिलता हैं क्योंकि आज ग़रीब किसान लगातार अपनी जगह-ज़मीन से उजड़कर सर्वहारा आबादी में धकेले जा रहे हैं। कई अध्ययन ये बता रहे हैं कि छोटी जोत की खेती घाटे का सौदा साबित हो रही है

इसकी ताज़ा मिसाल सूचना के अधिकार क़ानून के तहत मिली जानकारी से मिलती है जिसके अनुसार देश में 2008 से 2011 के बीच देश भर में 3340 किसानों ने आत्महत्या की। इस तरह से हर महीने देश में 70 से अधिक किसान आत्महत्या कर रहे हैं जिसमें सबसे अधिक महाराष्ट्र में 1862 किसानों ने आत्महत्या की, कर्नाटक में 371 किसानों ने आत्महत्या की। वहीं दूसरी तरफ कर्ज़ के बोझ तले किसानों की बात की जाये तो देश में एक लाख 25 हजार परिवार सूदखोरों के चंगुल में फँसे हुए हैं।

ये चन्द आँकड़े बेनी प्रसाद जी के लिए काफी होने चाहिए जो किसानों की खुशहाली की बात कर रहे हैं लेकिन ग़रीब किसान के उजड़ने और व्यवस्था द्वारा की जा रही ठण्डी हत्याओं पर चुप हैं। वैसे भी मुनाफ़े पर टिकी इस व्यवस्था में मँहगाई के बढ़ने से मुनाफ़ा भी बड़ी पूँजी को ही होगा। छोटी पूँजी का इस व्यवस्था में उड़जना तय है।

– प्रेम प्रकाश, बुराड़ी, दिल्ली

एक बेहद प्रासंगिक और विचारोत्तेजक पुस्तिका

भ्रष्टाचार और उसके समाधान का सवाल

सोचने के लिए कुछ मुद्दे

आह्वान पुस्तिका–6

मूल्य: 25 रुपये

सभी बिगुल और आह्वान पुस्तिकाएँ यहाँ से प्राप्त करें:
जनचेतना
डी-68, निरालानगर
लखनऊ-226020
फ़ोन: 0522-2786782

बाल मज़दूरी और जबरिया मज़दूरी के हर रूप का ख़ात्मा मज़दूर आन्दोलन की एक अहम माँग है

(पेज 7 से आगे)

पुरज़ोर ढंग से चलाया जाना चाहिए। पर इसका परिप्रेक्ष्य यदि क्रान्तिकारी नहीं होगा, साम्राज्यवाद-पूँजीवाद विरोधी नहीं होगा, यदि साम्राज्यवाद-पूँजीवाद विरोधी जनता के विभिन्न वर्गों और हिस्सों के संघर्षों से यह आन्दोलन जुड़ा नहीं होगा और यदि यह एक समग्र क्रान्तिकारी कार्यक्रम का अंग नहीं होगा तो यह महज एक सुधारवादी आन्दोलन होगा जो दूरगामी तौर पर व्यवस्था की सेवा ही करेगा।

इसीलिए, **मज़दूर माँगपत्रक आन्दोलन** ने यह माँग उठायी है कि बाल मज़दूरी उन्मूलन क़ानून को प्रभावी ढंग से लागू कराया जाये। इसके अमल की निगरानी के लिए हर ज़िले में समितियाँ गठित की जायें जिनमें ज़िला प्रशासन के अधिकारियों के साथ श्रम मामलों के विशेषज्ञ, जनवादी अधिकार आन्दोलन के कार्यकर्त्ता और सामाजिक कार्यकर्त्ता शामिल हों। मज़दूर माँगपत्रक में साफ़ कहा गया है कि बाल मज़दूरी का कारण भयंकर ग़रीबी, बेरोज़गारी और सामाजिक सुरक्षा का अभाव है। इसलिए बाल मज़दूरी को प्रभावी तरीक़े से कम करने के लिए ज़रूरी है कि न्यूनतम मज़दूरी, ग़रीबों की सामाजिक सुरक्षा, खाद्य सुरक्षा, रोज़गार, शिक्षा, चिकित्सा आदि के अधिकारों को मुहैया कराने के लिए ज़रूरत मुताबिक़ प्रभावी क़ानून बनाये जायें और उन्हें प्रभावी ढंग से लागू कराया जाये।

इसके साथ ही मज़दूर माँगपत्रक की माँग है कि बँधुआ मज़दूरी सहित किसी भी रूप में जबरिया श्रम पर रोक लगाने के लिए सख़्त क़ानूनी प्रावधान किये जायें, उन पर श्रम विभाग द्वारा अमल कराया जाये तथा इस अमल पर सार्वजनिक निगरानी के लिए लोकतान्त्रिक ढंग की समितियाँ बनायी जायें।

"बुर्जुआ अख़बार पूँजी की विशाल राशियों के दम पर चलते हैं। मज़दूरों के अख़बार ख़ुद मज़दूरों द्वारा इकट्ठा किये गये पैसे से चलते हैं।"
– लेनिन

'मज़दूर बिगुल' मज़दूरों का अपना अख़बार है।
यह आपकी नियमित आर्थिक मदद के बिना नहीं चल सकता। बिगुल के लिए सहयोग भेजिये/जुटाइये। सहयोग कूपन मँगाने के लिए मज़दूर बिगुल कार्यालय को लिखिये।

मज़दूर साथियो, 'आपस की बात' आपका पन्ना है। इसमें छापने के लिए अपने कारख़ाने, काम, बस्ती की समस्याओं व स्थितियों के बारे में, अपनी सोच के बारे में लिखकर हमें भेजिये। आपको 'बिगुल' कैसा लगता है, इसमें क्या अच्छा लगता है और क्या कमियाँ नज़र आती हैं, इसे और बेहतर कैसे बनाया जा सकता है – इन बातों पर भी आपकी राय जानने से हमें मदद मिलेगी। आप नीचे दिये पते पर हमें पत्र लिख सकते हैं या बिगुल कार्यकर्ता साथी को ज़ुबानी भी बता सकते हैं।– सम्पादक मण्डल

मज़दूर बिगुल की नयी वेबसाइट
आप यहाँ देख सकते हैं:
www.mazdoorbigul.net

इस वेबसाइट पर दिसम्बर 2007 से अब तक बिगुल के सभी अंक क्रमवार, उससे पहले के कुछ अंकों की महत्वपूर्ण सामग्री तथा राहुल फ़ाउण्डेशन से प्रकाशित सभी बिगुल पुस्तिकाएँ उपलब्ध हैं। हम बिगुल के प्रवेशांक से लेकर अब तक के सभी अंक वेबसाइट पर उपलब्ध कराने के लिए काम कर रहे हैं।

आप इस वेबसाइट पर जाकर भी बिगुल की सामग्री पर अपने विचार व्यक्त कर सकते हैं या कोई रिपोर्ट आदि हमें भेज सकते हैं।

मज़दूर बिगुल का स्वरूप, उद्देश्य और ज़िम्मेदारियाँ

1. 'मज़दूर बिगुल' व्यापक मेहनतकश आबादी के बीच क्रान्तिकारी राजनीतिक शिक्षक और प्रचारक का काम करेगा। यह मज़दूरों के बीच क्रान्तिकारी वैज्ञानिक विचारधारा का प्रचार करेगा और सच्ची सर्वहारा संस्कृति का प्रचार करेगा। यह दुनिया की क्रान्तियों के इतिहास और शिक्षाओं से, अपने देश के वर्ग संघर्षों और मज़दूर आन्दोलन के इतिहास और सबक़ से मज़दूर वर्ग को परिचित करायेगा तथा तमाम पूँजीवादी अफ़वाहों-कुप्रचारों का भण्डाफोड़ करेगा।
2. 'मज़दूर बिगुल' देश और दुनिया की राजनीतिक घटनाओं और आर्थिक स्थितियों के सही विश्लेषण से मज़दूर वर्ग को शिक्षित करने का काम करेगा।
3. 'मज़दूर बिगुल' भारतीय क्रान्ति के स्वरूप, रास्ते और समस्याओं के बारे में क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों के बीच जारी बहसों को नियमित रूप से छापेगा और स्वयं ऐसी बहसें लगातार चलायेगा ताकि मज़दूरों की राजनीतिक शिक्षा हो तथा वे सही लाइन की सोच-समझ से लैस होकर क्रान्तिकारी पार्टी के बनने की प्रक्रिया में शामिल हो सकें और व्यवहार में सही लाइन के सत्यापन का आधार तैयार हो।
4. 'मज़दूर बिगुल' मज़दूर वर्ग के बीच लगातार राजनीतिक प्रचार और शिक्षा की कार्रवाई चलाते हुए सर्वहारा क्रान्ति के ऐतिहासिक मिशन से उसे परिचित करायेगा, उसे आर्थिक संघर्षों के साथ ही राजनीतिक अधिकारों के लिए भी लड़ना सिखायेगा, दुअन्नी-चवन्नीवादी भूजाछोर "कम्युनिस्टों" और पूँजीवादी पार्टियों के दुमछल्ले या व्यक्तिवादी-अराजकतावादी ट्रेडयूनियनबाज़ों से आगाह करते हुए उसे हर तरह के अर्थवाद और सुधारवाद से लड़ना सिखायेगा तथा उसे सच्ची क्रान्तिकारी चेतना से लैस करेगा। यह सर्वहारा की क़तारों से क्रान्तिकारी भरती के काम में सहयोगी बनेगा।
5. 'मज़दूर बिगुल' मज़दूर वर्ग के क्रान्तिकारी शिक्षक, प्रचारक और आह्वानकर्ता के अतिरिक्त क्रान्तिकारी संगठनकर्ता और आन्दोलनकर्ता की भी भूमिका निभायेगा।

मज़दूर बिगुल 'जनचेतना' की सभी शाखाओं पर उपलब्ध है :

- डी-68, निरालानगर, लखनऊ-226020 फोन : 0522-2786782
- जनचेतना स्टाल, काफ़ी हाउस बिल्डिंग, हज़रतगंज, लखनऊ (शाम 5 से 8 बजे)
- 114, जनता मार्केट, रेलवे स्टेशन रोड, गोरखपुर-273001
- जनचेतना, दिल्ली – फ़ोन : 09910462009
- जनचेतना, लुधियाना – फोन : 09815587807

मज़दूर बिगुल

सम्पादकीय कार्यालय	: 69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006 फ़ोन : 0522-2335237
दिल्ली सम्पर्क	: बी-100, मुकुन्द विहार, करावलनगर, दिल्ली-94, फ़ोन: 011-64623928
ईमेल	: bigul@rediffmail.com
मूल्य	: एक प्रति – रु. 5/- वार्षिक – रु. 70/- (डाक खर्च सहित)

कारख़ाना इलाक़ों से

बेकारी के आलम में

काम की तलाश करते हुए मैं गुड़गाँव के उद्योग विहार में शनि मन्दिर के पास वाले लेबर चौक पर जाकर खड़ा हो गया। लेबर चौक पर बड़ी बुरी हालत थी। जैसे ही कोई पार्टी आती, मज़दूर उस पर ऐसे झपटते जैसे गुड़ पर चींटे झपटते हैं। काम पाने की बदहवासी में मज़दूर एक-दूसरे से गाली-गलौच की जिस ज़ुबान में बात करते हैं उसे साफ़-सुथरी भाषा में नहीं लिखा जा सकता। लगभग हर लेबर चौक पर यह नज़ारा दिख जाता है और काम पाने के लिए मज़दूरों की यह बदहवासी देखकर मज़दूरों को ले जाने वाली पार्टियाँ गिरगिट की तरह रंग बदलकर कम से कम मज़दूरी पर काम करने वाले लेबर ले जाती हैं। और कोई चारा नहीं होने से, मज़दूर भी 300 रुपये की जगह 150 रुपये तक में काम करने को राज़ी हो जाते हैं और वो भी मालिक की शर्तों पर।

यहाँ के लोकल मालिक लोग पूरी गुण्डागर्दी के साथ सिर पर चढ़कर काम कराते हैं और कभी-कभी तो बिना पैसे दिये ही, गाली देकर भगा देते हैं। वे जानते हैं कि "ये साले यू.पी. वाले और बिहारी हमारा क्या बिगाड़ लेंगे।" यहाँ के मकानमालिक, दूकानदार और गाँव वालों के लुटेरू गँठजोड़ की वजह से अधिकतर मज़दूर आतंकित रहते हैं। मज़दूर किसी से ज़्यादा मेल-जोल नहीं रखते और बस अपने काम से मतलब रखते हैं।

कापसहेड़ा, डुण्डाहेड़ा, मौलाहेड़ा, गुड़गाँव – ये सभी पहले गाँव थे, पर जब से यहाँ फ़ैक्टरियाँ लगनी शुरू हुईं तो यहाँ के लोगों की चाँदी हो गयी। जिस किसान के पास एक बीघा ज़मीन थी उसे भी लाखों रुपये का मुआवज़ा मिला। इन रुपयों से इन्होंने 8-10 वर्गफुट के कमरे बनवाये, दूकानें खोलीं और यह नियम बना दिया कि जो मज़दूर जिस मकान में रहेगा वह वहीं से राशन लेगा, वरना वहाँ नहीं रहेगा। इस तरह पहले के छोटे किसान भी आज लुटेरों की जमात में शामिल हो गये हैं। यहाँ की स्थानीय आबादी की शानो-शौकत का ख़र्च भी परदेशी मज़दूर ही उठाते हैं। इन जगहों पर अब भी खाप-पंचायतें लगती हैं। बुज़ुर्ग लोग दिन भर यूँ ही बैठे हुक्का पीते रहते हैं। बाहर से आये लोगों के साथ गाली-गलौज करना या मामूली बात पर मार-पीट आम बात है।

मज़दूरों की ज़िन्दगी तबाह और बर्बाद है। बेरोज़गारी का आलम यह है कि लेबर चौक पर सौ में से 10 मज़दूर ऐसे भी मिल जायेंगे जिन्हें महीने भर से काम नहीं मिला। ऐसे में, जब कोई रास्ता नहीं बचता, तो ज़िन्दगी बचाने के लिए वो उल्टे-सीधे रास्ते अपना लेते हैं। ऐसे ही एक तरीक़े के बारे में बताता हूँ – भारत सरकार ने बढ़ती आबादी को रोकने के लिए नसबन्दी अभियान चलाया है। इसी अभियान में लगे दो एजेण्ट यहाँ के लेबर चौक पर लगभग हर रोज़ आते हैं और नसबन्दी कराने पर 1100 रुपये नकद दिलाने का लालच देकर हमेशा कई मज़दूरों को ले जाते हैं। ज़ाहिर सी बात है कि भूख से मरते लोग कोई रास्ता नहीं होने पर इसके लिए भी तैयार हो जाते हैं।

ऐसे एक एजेण्ट से बात करने पर उसने बताया, 'हम दो लोग हैं। हमको हर रोज़ पाँच आदमी चाहिए ही चाहिए। एक नसबन्दी कराने के लिए सरकार से 850 रुपये का कमीशन मिलता है।' यानी हर रोज़, दोनों की कुल करीब 4000 रुपये (प्रति एजेण्ट 2000 रुपये रोज़) की कमाई होती है। उसने बताया कि लेबर चौक, बस अड्डा, रास्ते से गुज़रते बेरोज़गारों से बात करने पर पाँच लोग आराम से मिल जाते हैं। कुछ लोगों को मुँहा-मुँही प्रचार के काम में भी लगा रखा है और वो जब भी इसके लिए आदमी लाते हैं तो उनको भी सौ या दो सौ रुपये दे देते हैं। नसबन्दी कराने वाले को 1100 रुपये देने की बात पूछने पर वह गोलमोल जवाब देकर दूसरी ओर निकल गया।

• शिवानन्द

मुनाफ़ाख़ोर मालिक, समझौतापरस्त यूनियन

बादली औद्योगिक क्षेत्र में एफ. 2/80 फ़ैक्टरी है। (ज़्यादातर फ़ैक्ट्रियों में नाम के बोर्ड नहीं हैं, सिर्फ़ पता होता है ताकि क़ानूनी कार्रवाई की नौबत आये तो मज़दूर के लिए मुसीबत बढ़ जाये।) दो बंसल भाई इसके मालिक हैं और इसमें बाल्टी, टंकी व अनेक प्रकार के बर्तन बनते हैं। इस फ़ैक्टरी में करीब 100 मज़दूर काम करते हैं, जिनमें करीब 35 मज़दूर एक ठेकेदार के नीचे पीस रेट पर काम करते हैं। इन मज़दूरों का मालिक से कोई सीधा वास्ता नहीं है। कुछ मज़दूरों को ठेकेदार ने काम की कमी की बात कहकर हटा दिया है। इसके अलावा, 40 पुराने कारीगर हैं। कुछ कारीगरों की तनख़्वाह 7000 रुपये हैं जो "मालिक के आदमी" माने जाते हैं।

इस फ़ैक्ट्री के मज़दूर वेतन बढ़ाने की माँग कर रहे हैं। मज़दूरों का कहना है कि मज़दूरी की सरकारी दर बढ़ी है और महँगाई भी बढ़ी है इसलिए 1100 रुपये बढ़ने चाहिए जबकि मालिक ने इस साल जनवरी में सिर्फ़ 600 रुपये बढ़ाये हैं। मज़दूरों का कहना है कि यूँ तो 1000 रुपये और बढ़ने चाहिए, लेकिन अगर मालिक 500 रुपये भी बढ़ाता है तो वे समझौता करने को तैयार हैं। फ़ैक्ट्री में एक ही ज़िले के करीब 30 लोग हैं जो वेतन बढ़ोत्तरी के लिए संघर्ष करने को तैयार हैं और 40-50 अन्य कारीगर व हेल्पर भी उनका साथ दे रहे हैं। दूसरी तरफ़, मालिक ने पहले मई में और फिर जून में बढ़ोत्तरी करने की बात कही थी, लेकिन जुलाई आने पर पहले काम कम होने का बहाना करके वेतन बढ़ाने से इन्कार कर दिया, लेकिन फिर 12 जुलाई को 200 रुपये बढ़ाने की बात कही। हालाँकि, मज़दूरों ने तब तक तनख्वाह नहीं ली थी।

मज़दूरों के पास जानकारी का अभाव होने और संघर्ष का कोई मंच नहीं होने के कारण, उन्होंने सीटू की शरण ले ली। मज़दूरों का कहना है कि हम लड़ने को तैयार हैं, लेकिन हमें कोई जानकारी नहीं है इसलिए हमें किसी यूनियन का साथ पकड़ना होगा। जबकि सीटू ने मज़दूरों से काम जारी रखने को कहा है और लेबर आफ़िसर के आने पर समझौता कराने की बात कही है। आश्चर्य की बात यह है कि संघर्ष का नेतृत्व करने वाले किसी भी आदमी ने यह स्वीकार नहीं किया कि वे संघर्ष कर रहे हैं। सीटू की सभाओं में झण्डा उठाने वाले फ़ैक्ट्री के एक व्यक्ति का कहना था कि हमारी मालिक से कोई लड़ाई नहीं है। दिलचस्प बात यह है कि जहाँ मालिक को सीटू के नेतृत्व में आन्दोलन चलने से कोई समस्या नहीं है, वहीं सीटू के लिए यह संघर्ष नहीं "आपस की बात" है।

• रामाधार

दीप ऑटो के नियम-क़ानून
दीप ऑटो प्राइवेट लिमिटेड

दिल्ली के समयपुर इलाक़े के रेलवे रोड पर स्थित एक कम्पनी है। इस फ़ैक्टरी की तीन मंज़िलों में ऑटो पार्ट्स में लगने वाले तार बनते हैं। निचली मंज़िल पर पावर प्रेस लगे हैं जिन पर स्टील और ताँबे के रोल चढ़ाये जाते हैं और दूसरी मशीनों पर मेटल की पत्तियाँ काटी जाती हैं। तीसरी मंज़िल पर मेटल की पत्तियों को हाथदाबा (हैण्ड प्रेस) मशीन से मोड़कर तार के साथ जोड़ा जाता है। बीच की मंज़िल में पैकिंग होती है।

इस फ़ैक्टरी में कुल 100 मज़दूर काम करते हैं जिसमें से ज़्यादातर लड़कियाँ हैं। हैण्ड प्रेस मशीन को ज़्यादातर लड़कियाँ ही चलाती हैं। हर मंज़िल पर दो सुपरवाइज़र हैं – एक माल की इण्ट्री करने के लिए और दूसरा माल तैयार कराने के लिए। मालिक और उसका बेटा आफ़िस में बैठते हैं। इसके अलावा दो कम्प्यूटर ऑपरेटर हैं और हिसाब-किताब में मालिक की मदद करने के लिए एक अकाउण्टेण्ट आता है।

कहने को यह लिमिटेड फ़ैक्टरी है लेकिन तमाम सरकारी क़ानून मालिक के ठेंगे पर रहते हैं। यहाँ का पहला नियम है – मज़दूर को अगर एक मिनट की भी देर हुई तो एक घण्टे का पैसा काट लिया जायेगा। दूसरा नियम – सभी मज़दूर अनुशासन का पालन करते हुए, समय से लंच करेंगे, दिन में 3 बार पानी पी सकते हैं और 3 बार बाथरूम जा सकते हैं। चूँकि बाथरूम जाने और पानी पीने का काम एक साथ भी हो सकता है इसलिए मज़दूर अपने काम की जगह से दिन में सिर्फ़ 3 बार ही उठ सकते हैं। अगर कोई मज़दूर चौथी बार उठ जाये, तो उसके एक घण्टे के काम का पैसा काट लिया जाता है।

तीसरा नियम – अगर किसी को छुट्टी चाहिए, तो उसे लिखित अर्ज़ी में मैनेजर या मालिक से दस्तख़त कराने होंगे। इसके लिए एक मज़दूर को कितनी परेशानी उठानी पड़ती है और कितनी जिरह करनी पड़ती है, ये वो ही जानता है। तबियत ख़राब होने की बात को "बहाना" माना जाता है। अगर हफ़्ते में एक छुट्टी की, तो दो दिन के पैसे कटेंगे और दो छुट्टी की तो तीन दिन के पैसे कटेंगे।

इसके अलावा, फ़ैक्टरी के चप्पे-चप्पे पर नज़र रखने के लिए कैमरे लगे हैं जिससे अनुशासन में कोई ढिलाई नहीं हो। जब भी कोई मज़दूर फ़ैक्टरी गेट से बाहर निकलता है, तो हर बार बड़ी मुस्तैदी से तलाशी ली जाती है कि वो कहीं कोई बोल्ट चुराकर न ले जाये। ऐसे जेल जैसे माहौल में गर्दन झुकाकर लगातार काम में लगे रहने के बदले में स्त्री मज़दूर को 8 घण्टे काम के 3200 रुपये महीना और पुरुष मज़दूर को 3500 रुपये महीना मिलते हैं। ओवरटाइम सिंगल रेट से ही मिलता है। अगर मज़दूर तीन-चार साल पुराने हों, तो स्त्री मज़दूर को 3500 रुपये महीना और पुरुष मज़दूर को 4000 रुपये महीना मिलते हैं। ये नियम-क़ानून किसी नोटिस बोर्ड पर नहीं लिखे हैं, मगर ये सभी मज़दूरों को याद रहते हैं। क्योंकि याद नहीं रहने पर ख़ामियाजा भुगतना पड़ता है।

• सुधा

अगर कोई सरकार जनता को उसके बुनियादी अधिकारों से भी वंचित रखती है तो उस देश के नौजवानों का दायित्व ही नहीं बल्कि फ़र्ज़ बन जाता है कि ऐसी सरकार को बदल दें या तबाह कर दें।

– भगतसिंह

मासू इण्टरनेशनल की दास्तान

मासू इण्टरनेशनल प्रोडक्ट्स लिमिटेड दिल्ली के बादली इलाक़े में है। इसमें अमेरिका को एक्सपोर्ट करने के लिए वी.आई.पी. ऑटो पार्ट्स बनते हैं। इस कम्पनी में 41 लोग काम करते हैं जिसमें से 11 स्टाफ के लोग और 30 मज़दूर हैं। स्टाफ में – एक मैनेजर, एक प्रोडक्शन सुपरवाइज़र, माल की इण्ट्री करने और माल भेजने के लिए दो कम्प्यूटर ऑपरेटर, एक इंजीनियर, एक इलेक्ट्रीशियन, पार्टी के साथ लेन-देन करने के लिए एक कर्मचारी, छोटे-मोटे सामान लाने के लिए एक फ़ील्ड वर्कर। इनमें से फ़ील्ड वर्कर को छोड़कर बाकी सबकी तनख्वाह दस हज़ार से ज़्यादा है। इनके अलावा तीन महिला क्लर्क हैं – एक कागज़-पत्र के काम में आफिस के स्टाफ़ की मदद के लिए, दूसरी दोनों मालिकों की मदद के लिए और तीसरी का काम है सारे स्टाफ़ को चाय-पानी पिलाना। फ़ैक्टरी में एक प्रेशर पॉलिश डिपार्टमेण्ट है जो ठेकेदार के तहत है।

ग्राइण्डर मशीनें, ड्रिल मशीनें, खराद मशीनें, रिगिंग मशीनें, ब्राइट हाइड्रो पावर प्रेस, पावर प्रेस, धातु में चूड़ियाँ बनाने वाली थ्रेड रोलिंग मशीन, हाइड्रोलिक मशीन, इलेक्ट्रिक इंजेक्शन हीट मशीन सहित फ़ैक्ट्री में कुल 44 मशीनें हैं जिन पर 30 मज़दूर काम करते हैं। इतना तो आप समझ ही गये होंगे कि कम से कम 70 मज़दूरों का काम 30 मज़दूरों से कराया जाता है। मज़दूरों को 10 घण्टे तक बैलों की तरह हाड़तोड़ काम करना पड़ता है। ख़ैर, बैलों की स्थिति भी हम मज़दूरों से ठीक ही होती होगी क्योंकि कोई किसान अपने बैलों से जितना काम लेता है उस हिसाब से अच्छा दाना और चारा खिलाता है और प्यार भी करता है। यहाँ कोई मज़दूर प्यार के दो बोल सुनने की उम्मीद नहीं करता, उल्टा हमारे पेट काटने के तरह-तरह के नियम बनाये गये हैं। पेट काटने के इन नियमों से ही मालिकान हर साल करोड़ों की बचत कर लेते हैं।

अगर काम पर 5 मिनट लेट आये तो आधा घण्टे का पैसा कटेगा; अगर 10 मिनट लेट हुए तो एक घण्टे का और अगर 30 मिनट लेट आये तो चार घण्टे का पैसा कटेगा। हर रोज़ सुबह 9 बजे से शाम 7:30 बजे तक काम करना होता है जिसमें से आधा घण्टा लंच की छुट्टी मिलती है। इसके बाद सिंगल रेट पर ओवरटाइम करना चाहें तो आपकी मर्ज़ी, लेकिन दस घण्टे हाड़तोड़ काम करने के बाद शरीर जवाब दे जाता है। हेल्पर की तनख़्वाह 4000 रुपये और अनुभवी कारीगरों की तनख़्वाह 9000 रुपये से ज़्यादा नहीं है। 11 साल पुराने मज़दूर भी अब तक हेल्पर की तनख़्वाह ही पाते हैं, और किसी भी हेल्पर को ई.एस. आई., फण्ड, बोनस आदि कुछ नहीं मिलता।

• आनन्द

इस जानलेवा महँगाई में कैसे जी रहे हैं मज़दूर

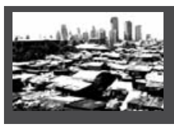

मज़दूर बस्तियों से

कुछ महीने पहले कुछ दिनों के लिए जानलेवा महँगाई की ख़बर अखबार और टीवी की सुर्ख़ियों में आयी थी। 'महँगाई डायन खाये जात है' या 'बढ़ती क़ीमतों की मार ग़रीब के पेट पर' जैसी ख़बरें अखबारों के पहले पन्ने पर दिखती थीं। लेकिन जल्दी ही ये खबरें सुर्ख़ियों से ग़ायब हो गयीं। उनकी जगह भ्रष्टाचार मिटाने का दावा करने वाले तरह-तरह के आन्दोलनों, घपलों-घोटालों, संसद में हंगामे, सरकार बचाने-गिराने की तिकड़मों और साम्प्रदायिक दंगों की ख़बरें मीडिया में छा गयीं। ऐसा लगा जैसे कि महँगाई अब कोई समस्या ही नहीं रह गयी है। समाज के ऊपरी 15-20 प्रतिशत मलाईदार तबकों के लिए बेशक यह कोई समस्या नहीं होगी, बल्कि बहुतों को तो इस महँगाई से भी कमाई के तमाम रास्ते मिल जाते हैं। लेकिन इस देश की 80 फ़ीसदी मेहनतकश जनता के लिए तो इस महँगाई ने जीने का भी संकट पैदा कर दिया है।

पूँजीवादी "विकास" की सरपट दौड़ में शामिल खाये-पिये-अघाये वर्गों के लिए जिस तरह देश के ग़रीब मेहनतकश लोग नज़र से ओझल रहते हैं, उसी तरह इन ग़रीबों की ज़िन्दगी के सबसे अहम सवाल भी उनकी नज़र से, और उन्हीं की सेवा करने वाले मीडिया की नज़र से ओझल रहते हैं। यह भी सोचने की बात है कि जब रोज़ी-रोटी के ये सवाल बहुत तीखेपन के साथ उभरने लगते हैं, तभी तमाम तरह के बखेड़े खड़ा करके उन्हें परदे के पीछे धकेलने की कोशिश शुरू हो जाती है। यह शासक वर्गों की सोची-समझी और बार-बार आज़मायी हुई तरक़ीब है जो कभी नाकाम नहीं रहती। याद कीजिये, 1990 के दशक की शुरुआत में जब पूँजीवादी संकट चरम पर था और निजीकरण-उदारीकरण की नीतियाँ देश में लागू करने की तैयारी की जा रही थी। जनता के पैसे से खड़े किये गये बड़े-बड़े सरकारी उद्योगों को कौड़ियों के मोल निजी पूँजीपतियों को सौंपा जा रहा था। हज़ारों कारख़ाने बन्द हो रहे थे, करोड़ों मज़दूरों और कर्मचारियों की छँटनी हो रही थी। बेरोज़गारी और महँगाई ने आम जनता का जीना हराम कर दिया था और जनता में असन्तोष और आक्रोश बढ़ता जा रहा था। ठीक ऐसे ही समय में पहले पिछड़े वर्गों के आरक्षण का सवाल उछाला गया और फिर बाबरी मस्जिद को लेकर देश भर में साम्प्रदायिक नफ़रत और मारकाट की लहर उभारी गयी। पक्ष-विपक्ष की सारी चुनावी पार्टियाँ और पूरा पूँजीवादी मीडिया सुनियोजित ढंग से जन भावनाओं को भड़काने के इस खेल में लगे रहे और लोगों का ध्यान बँटाने में कामयाब रहे। इसका नतीजा यह हुआ कि आम लोगों के लिए घनघोर विनाशकारी आर्थिक नीतियाँ बिना किसी ख़ास विरोध के लागू हो गयीं जिसकी क़ीमत आज तक देश के मेहनतकश अपनी जान देकर चुका रहे हैं।

यही कहानी फिर से दोहराती नज़र आ रही है। जिस वक़्त महँगाई ने देश के 100 में 80 लोगों के लिए ज़िन्दा रहना दूभर कर दिया है, उस वक़्त भी देश की संसद के पास इस मुद्दे पर चर्चा करने के लिए समय नहीं है। जिस संसद की एक मिनट की कार्यवाही पर जनता की गाढ़ी कमाई से आने वाले दो लाख रुपये खर्च हो जाते हैं, उस संसद में कई-कई दिन सिर्फ़ हंगामा और जूतम-पैज़ार होता रहा लेकिन आम लोगों को जानलेवा महँगाई से राहत देने का सवाल एक बार भी नहीं उठा।

टीवी चैनलों में कभी-कभी महँगाई की ख़बर अगर दिखायी भी जाती है तो भी उनके कैमरे कभी उन ग़रीबों की बस्तियों तक नहीं पहुँच पाते जिनके लिए महँगाई का सवाल जीने-मरने का सवाल है। टीवी पर महँगाई की चर्चा में उन खाते-पीते घरों की महिलाओं को ही बढ़ते दामों का रोना रोते दिखाया जाता है जिनके एक महीने का सब्ज़ी का खर्च भी एक मज़दूर के पूरे परिवार के महीनेभर के खर्च से ज़्यादा होता है। रोज़ 200-300 रुपये के फल खरीदते हुए ये लोग दुखी होते हैं कि महँगाई के कारण होटल में खाने या मल्टीप्लेक्स में परिवार सहित सिनेमा देखने में कुछ कटौती करनी पड़ रही है। मगर हम 'मज़दूर बिगुल' के पाठकों के सामने एक तस्वीर रखना चाहते हैं कि देश की सारी दौलत पैदा करने वाले मज़दूर इस महँगाई के दौर में कैसे गुज़ारा कर रहे हैं।

आगे दिल्ली की एक मज़दूर बस्ती में किये गये सर्वेक्षण से मिले आँकड़े दिये जा रहे हैं। इन दामों को पढ़कर चौंकियेगा नहीं कि ये दाम तो मध्यवर्गीय कालोनियों या शॉपिंग मॉलों की दुकानों से भी ज़्यादा हैं। क्योंकि हक़ीक़त यही है। दिल्ली की सभी मज़दूर बस्तियों में सबसे घटिया माल आता है और सबसे ऊँचे दाम वसूले जाते हैं। उधार लेने पर और थोड़ा-थोड़ा करके सामान ख़रीदने पर क़ीमतें और भी बढ़ जाती हैं। ज़्यादातर बस्तियों में मकानमालिकों ने ही किराने की दुकान भी खोल रखी है और किराये पर रहने वाले मज़दूरों को मजबूरी में उन्हीं से मनमाने दामों पर सामान ख़रीदना पड़ता है।

पहले तीन लोगों के एक मज़दूर परिवार की हालत देखते हैं।

पति-पत्नी व 6 वर्ष के बच्चे के 20 दिन के खाना-खुराकी का खर्च

(बादली, दिल्ली की राजा विहार बस्ती में किराने की दुकान के उधारी रजिस्टर से, 15-8-12 से 5-9-12 तक)

आटा - 20 किलो	रु. 400
चावल- 20 किलो	रु. 418
चीनी - 4 किलो	रु. 160
तेल - 2 लीटर	रु. 200
चना - 1/1/2 किलो	रु. 90
दाल - 2/1/2 किलो	रु. 217
वाशिंग पाउडर -	रु. 40
मसाले –	रु. 120
सोया बड़ी - 1/2 किलो	रु. 50
रस्क -	रु. 40
बिस्कुट -	रु. 35
साबुन -	रु. 27
चाय पत्ती -	रु. 10
अण्डा -	रु. 36
कुकिंग गैस - 4 किलो -	रु. 280
फुटकल (मंजन, खैनी, बीड़ी, नमक, गुटखा, माचिस, फोन)	– रु. 300
कुल खर्च	**– रु. 2423**

20 दिन के इस खर्च के आधार पर इसमें 10 दिन के लिए 1200 रुपये और जोड़ दें तो क़रीब 3600 रुपये हो जाते हैं। बच्चे के लिए कभी-कभार दूध और सस्ती से सस्ती सब्ज़ी का खर्च जोड़ें तो खर्च लगभग रु. 4400 तक पहुँच जाता है। इसमें कमरे का किराया और बिजली का बिल (रु. 1600) जोड़ दें तो 6000 रुपये हो जाते हैं। इन बस्तियों में बिजली का बिल 6 रुपये प्रति यूनिट की दर से लिया जाता है, कोई-कोई मकानमालिक तो 8 रुपये भी वसूलता है। कमरों में बिजली का मीटर घोड़े की रफ़्तार से भागता है। ज़ीरो वाट का बल्ब जलाने पर भी महीने में 10 यूनिट ख़र्च हो जाते हैं, एक पंखा चलाओ तो महीने में 30 यूनिट बन जाते हैं। यह तीन लोगों के ज़िन्दा रहने की बुनियादी ज़रूरतों का खर्च है। इसके अलावा साल भर में दो जोड़ी कपड़े, चप्पल, बच्चे की पढ़ाई आदि के खर्च का औसत निकालें तो महीने में कम से कम 500 रुपये आयेगा।

ये कभी-कभी बिना दूध की चाय पी लेते हैं, बाहर कभी कुछ नहीं खाते, कभी घूमने नहीं जाते और न ही इनके पास मनोरंजन का और कोई साधन है। यह मज़दूर बादली औद्योगिक क्षेत्र की एक चम्मच फैक्टरी में काम करता है जहाँ इसकी तनख़्वाह 8 घण्टे के 4000 रुपये हैं। तनख़्वाह के डेढ़ गुना से भी अधिक महीने का खर्च पूरा करने के लिए इसे लगातार ओवरटाइम और 'नाइट' लगाना पड़ता है। फिर भी, अगर किसी की तबियत ख़राब हो गयी, तो 5 रुपया सैकड़ा हर महीने ब्याज पर कर्ज़ लेना पड़ता है।

एक छोटे-से कमरे में रहने वाले तीन युवा मज़दूरों का महीने का खर्च

राशन/तेल/मसाले/साबुन/मंजन आदि	- रु. 3200
सब्ज़ी	- रु. 1050
मीट-मछली/अण्डा	- रु. 1120
दूध, चीनी, चाय, गैस	- रु. 420
कमरे का किराया व बिजली	- रु. 1500
पान मसाला/सिगरेट/चाय-समोसा/चाउमीन आदि, कभी-कभार देशी शराब	- रु. 2200
कपड़े, चप्पल आदि का तीन लोगों का औसत मासिक खर्च	- रु. 600
कुल खर्च	**- रु. 10,090**

इस तरह से, 22 से 26 वर्ष उम्र के इन तीन मज़दूरों में से हरेक का अपना खर्च लगभग 3400 रुपये होता है जिसमें घूमने-फिरने, मनोरंजन आदि के लिए कोई गुंजाइश नहीं होती। और इन्हें हर महीने पैसे बचाकर गाँव भेजने पड़ते हैं जहाँ इनके माँ-बाप, भाई-बहन या बीवी-बच्चे इन पर आश्रित हैं। साल में एक-दो बार घर जाने के लिए भी कुछ पैसे बचाने पड़ते हैं। अगर ये बिना कोई छुट्टी लिये, हफ़्ते में सातों दिन 12-14 घण्टे ओवरटाइम न करें और ऊपर से बीच-बीच में नाइट न लगायें तो गुज़ारा कैसे चलेगा, आप खुद सोच सकते हैं।

एक और लॉज के एक कमरे में रहने वाले पाँच मज़दूरों के खर्च का मोटा-मोटा हिसाब यहाँ दिया जा रहा है। इनका मकानमालिक थोड़ा उदार है इसलिए एक कमरे में 5 लोगों को रहने की इजाज़त दे दी है, वरना तीन से अधिक नहीं रह सकते।

कमरे का किराया (1400), बिजली का बिल (200), राशन, तेल, सब्ज़ी, गैस, मंजन-साबुन आदि का कुल खर्च (7000), पाँचों लोगों का बाहरी खर्च (पान-मसाला, बीड़ी, चाय-पान, बस भाड़ा, देशी शराब आदि मिलाकर 5000), साल भर के कपड़े, चप्पल आदि का औसत मासिक खर्च (1000), यानी कुल 14,600 रुपये। इस तरह, खर्च कम करने के लिए 8 गुणा 8 फ़ीट के छोटे-से कमरे में पाँच लोगों के रहने के बावजूद एक मज़दूर को गुज़ारा करने के लिए कम से कम 2900 रुपये चाहिए। इन सभी मज़दूरों को गाँव में अपने परिवार के पास महीने में ढाई से तीन हज़ार रुपये भेजने पड़ते हैं। किसी के घर में बूढ़े माँ-बाप हैं, किसी की पत्नी और छोटे बच्चे हैं, तो किसी के घर में दूसरा कोई रोज़गार नहीं है। कभी बीमार पड़े तो उतने दिन की दिहाड़ी भी गयी और दवा-इलाज का खर्च ऊपर से। फिर सोचना पड़ता है कि अपनी रोटी काटें या फिर माँ-बाप-बच्चे के गुज़ारे में से कटौती करें।

यह भी ध्यान रखने की बात है कि ऊपर की सारी चर्चा ऐसी बस्ती की है जो कारख़ाना इलाके से लगी हुई है इसलिए रोज़ काम पर आने-जाने का खर्च इसमें शामिल नहीं है। मगर यहाँ ऐसे भी मज़दूर रहते हैं जो दूर-दूर तक काम करने जाते हैं। कुछ लोग जो पहले बस से जाते थे अब पैसे बचाने के लिए एक-एक घण्टा पैदल चलकर काम पर जाते हैं। पिछले चन्द सालों में दिल्ली में दर्जनों बस्तियों को उजाड़कर लाखों मज़दूरों को शहर के बाहरी इलाकों में फेंक दिया गया है। इन मज़दूरों को किराये-भाड़े का मारक बोझ भी उठाना पड़ता है।

कुछ दिन पहले देश के योजना आयोग ने कहा था कि शहर में जो व्यक्ति रोज़ 32 रुपये खर्च कर लेता है वह ग़रीब नहीं है। इस हिसाब से तो इस बस्ती के सारे मज़दूर मालामाल कहे जायेंगे! कई बुद्धिजीवी अपने कमरों में बैठकर या टीवी चैनलों पर बहस किया करते हैं कि ग़रीबी के ये आँकड़े कितने सही या कितने गलत हैं। ऐसे लोगों को पकड़कर इन बस्तियों में लाया जाना चाहिए और दिखाना चाहिए कि 12-14 घण्टे पसीना बहाने के बाद भी मज़दूर किस तरह जानवरों-जैसी ज़िन्दगी बसर करने पर मजबूर हैं। ये लोग हमारे घावों पर ऐसे ही नमक छिड़कते रहेंगे, जब तक मज़दूर खुद अपनी इस हालत के ख़िलाफ़ आवाज़ नहीं उठायेगा।

ऐसी भयानक महँगाई में भी अगर हम जैसे-तैसे जोड़-तोड़कर, बचत-कटौती करके, मालिकों से थोड़ी-बहुत मज़दूरी बढ़ाने की चिरौरी-मिन्नत करके बस किसी तरह जी लेने में ही लगे रहेंगे तो हमें इस हालत से कभी भी निजात नहीं मिलेगी। हमें यह समझना ही होगा कि जब तक पूँजीवाद रहेगा, महँगाई कभी ख़त्म नहीं हो सकती।

● आनन्द, रामाधार

9 गुणा 8 फ़ीट के इस कमरे में 6 मज़दूर रहते हैं। एक दरवाज़े और बिना खिड़की वाले इस कमरे का किराया है 1500 रुपया + बिजली। 5 कमरों के बीच एक शौचालय और एक नल है।

लुधियाना में टेक्सटाइल मज़दूर यूनियन का स्थापना सम्मेलन

बिना जनवाद लागू किए कोई भी जनसंगठन सच्चे मायनों में जनसंगठन नहीं हो सकता। जनवाद जनसंगठन की जान होता है। सम्मेलन जनसंगठन में जनवाद का सर्वोच्च मंच होता है। किसी भी जनसंगठन के लिए सम्मेलन करने की स्थिति में पहुँचना एक महत्वपूर्ण मुकाम होता है। वर्ष 2010 में लुधियाना के पावरलूम मज़दूरों की लम्बी चली हड़तालों के बाद अस्तित्व में आयी टेक्सटाइल मज़दूर यूनियन ने पिछले 4 अगस्त को अपना स्थापना सम्मेलन किया।

टेक्सटाइल मज़दूर यूनियन का प्रथम सम्मेलन जो कि यूनियन का स्थापना सम्मेलन भी था, लुधियाना के मनजीत नगर की धर्मशाला में हुआ। सम्मेलन में लगभग 67 कारख़ानों से चुनकर भेजे गये 106 डेलीगेट शामिल हुए। दो वर्ष से संचालन समिति के नेतृत्व में काम कर रहे इस मज़दूर संगठन के स्थापना सम्मेलन में 13 सदस्यीय नेतृत्वकारी समिति का चुनाव किया गया। राजविन्दर (अध्यक्ष), विश्वनाथ (जनरल सेक्रेटरी), ताज मोहम्मद (उपाध्यक्ष), विशाल (सेक्रेटरी), गोपाल (खजांची), घनश्याम पाल (प्रचार सेक्रेटरी, हीरामन, रामजतन, रामकरण, सुरेन्दर, छोटेलाल, प्रेमनाथ और रविन्दर मण्डल इस 13 सदस्यीय समिति के तौर पर चुने गये। कमेटी के चुनाव से पहले संचालन समिति की ओर से संचालक साथी राजविन्दर द्वारा राजनीतिक और सांगठनिक रिपोर्ट पढ़ी गयी और संविधान का मसविदा पेश किया गया। प्रतिनिधियों ने सर्वसम्मति के साथ दोनों दस्तावेज पास किये। काले क़ानूनों के ख़िलाफ़, मारुती सुज़ूकी के मज़दूरों के हक में, देशभर में जबरन जमीन अधिग्रहण करने की सरकारी नीति के ख़िलाफ़, स्पेन के खदान मज़दूरों के जुझारू संघर्ष के हक़ में और लुधियाना के टेक्सटाइल मज़दूरों की लम्बित माँगों और तोड़े गये समझौते लागू करवाने के लिए पाँच प्रस्ताव भी पेश किये गये जो सर्वसम्मति से पास हुए।

सम्मेलन में पेश की गयी राजनीतिक व सांगठनिक रिपोर्ट में कहा गया है कि आज विश्व पूँजीवादी व्यवस्था जिस भीषण मन्दी का सामना कर रही है उससे भारतीय अर्थव्यवस्था और यहाँ के मज़दूर भी अछूते नहीं रह सकते। दूसरे विश्व युद्ध के बाद पश्चिमी देशों के मज़दूर वर्ग को जो सुख-सुविधाएँ हासिल हुई थीं, वे अब छीनी जा रही हैं। पश्चिम का मज़दूर वर्ग भी अब संघर्ष का झण्डा उठाने को मज़बूर हुआ है। सन् 2011 की शुरुआत में तानाशाह सत्ताओं के ख़िलाफ़ जनउभार में मज़दूर वर्ग की अग्रणी भूमिका थी। यूनान में 2008 से शुरू हुआ सिलसिला रुक नहीं रहा। चीन के संशोधनवादी हुक़्मरान लम्बे समय से जनाक्रोश का सामना कर रहे हैं। इस पूरी स्थिति के दुखद पहलू पर बात करते हुए इस दस्तावेज़ में कहा गया है कि जगह-जगह उठ रहे मज़दूर संघर्षों में ऐसा नेतृत्व या तो कमज़ोर है या ग़ैरहाज़िर है, जो मज़दूर वर्ग को सम्पूर्ण मुक्ति की राह पर ले जाये। लेकिन पूँजीवादी व्यवस्था अपनी उम्र पूरी कर चुकी है। यह केवल इसलिए जिन्दा है क्योंकि मज़दूर वर्ग की ताक़त बिखरी है, नेतृत्व कमजोर है। लेकिन विश्व पूँजीवाद का लाइलाज संकट, इसके विरुद्ध बढ़ता जा रहा जनाक्रोश, सारे विश्व में पूँजीवाद से मुक्ति के लिए जन्म ले रही जन अकांक्षाएँ दिखाती है कि आने वाले दिनों में हालात बदलेंगे, मज़दूर वर्ग का मुक्ति कारवाँ आगे बढ़ेगा। भारत के हुक़्मरान विश्व पूँजीवादी संकट के भारत पर पड़ने वाले दुष्प्रभावों से लगातार इंकार करते रहे लेकिन अब वे भी मानने लगे हैं कि देश मुश्किल हालात से गुज़र रहा है। देश के हुक़्मरान संकट का सारा बोझ मज़दूरों-मेहनतकशों पर डालना चाहते हैं। आने वाले दिनों में अमीरी-ग़रीबी की खाई और अधिक तेज़ी से और अधिक गहरी और चौड़ी होगी। हुक़्मरान जनाक्रोश से निपटने के लिए नये काले क़ानून और एजेंसियाँ बनाने की तैयारी कर रहे हैं। एन.सी.टी.सी. नाम की नई खुफिया एजेंसी बनाने की तैयारी इसकी एक बड़ी मिसाल है। साम्प्रदायिक फ़ासीवाद जो कि पूँजीवादी हुक़्मरानों का संकट से निपटने का एक महत्वपूर्ण हथियार है और भी मज़बूत होता जा रहा है। हुक़्मरानों के इन हमलों का सामना करना आज मज़दूर वर्ग के सामने बड़ी चुनौती है।

टेक्सटाइल मज़दूर यूनियन के गठन और निर्माण की चर्चा करते हुए राजनीतिक और सांगठनिक रिपोर्ट में कहा गया कि 'बिगुल' से जुड़े साथियों द्वारा सन् 2000 के अंत में लुधियाना के मज़दूरों में मुख्यत: प्रचारात्मक तरीकों से कामों की शुरुआत हुई। अप्रैल 2007 में नौजवान भारत सभा के बैनर तले लुधियाना के मज़दूरों में कामों की शुरुआत हुई। 2008 में कारखाना मज़दूर यूनियन की स्थापना हुई। इस पूरे समय के दौरान अखबार, पर्चों, बेहड़ा (लॉज) मीटिंगों, नुक्कड़ सभाओं, विभिन्न दिवसों पर किये गये कार्यक्रमों आदि में सघन प्रचार अभियान संगठित किये गये। अनेकों संघर्षों में हिस्सा लिया गया और मज़दूरों की लामबन्दी की गयी। सन् 2010 में पावरलूम मज़दूरों की कारखाना मज़दूर यूनियन के नेतृत्व में चली हड़तालों के बाद टेक्सटाइल मज़दूर यूनियन की स्थापना हुई। इन दो वर्षों में टेक्सटाइल मज़दूर यूनियन ने मज़दूरों में सघन प्रचार संगठित किया, अनेकों संघर्षों का नेतृत्व किया। पहले कारखाना मज़दूर यूनियन तथा फिर टेक्सटाइल मज़दूर यूनियन द्वारा भी गतिविधियाँ मुख्यत: तीन प्रकार की रहीं - पहली आन्दोलनात्मक, दूसरी शिक्षा तथा प्रचार से सम्बन्धित गतिविधियाँ, तीसरी सुधार की गतिविधियाँ। राजनीतिक व सांगठनिक रिपोर्ट में संगठन की कई गम्भीर कमियों कमजोरियों की तरफ ध्यान दिलाया गया है। पूँजीवादी सरकार और राजनीतिक पार्टियों, मीडिया, न्याय व्यवस्था के मज़दूर आबादी में भण्डाफोड़ की दिशा में नाकाफ़ी कोशिशें हुई हैं। घर-घर क्रान्तिकारी साहित्य का वितरण, पुस्तक प्रदर्शनियाँ, व्यक्तिगत बातचीत, साप्ताहिक बैठकें आदि मज़दूरों को राजनीतिक शिक्षा देने में महत्वपूर्ण साधन रहे हैं। इस दिशा में भी कोशिशें नाकाफ़ी हैं। सुधार कार्यों में भी कुछ अधिक नहीं किया जा पाया है। यूनियन संगठन टेक्सटाइल और होजरी मज़दूरों के एक छोटे से हिस्से तक ही सीमित है। पुरुषों के मुक़ाबले स्त्रियों की भागीदारी नाममात्र है। यूनियन के सभी सदस्य साप्ताहिक मीटिंगों या अन्य कार्यक्रमों में शामिल नहीं होते। सभी सदस्य चन्दा नहीं देते। सक्रिय कार्यकर्ताओं की एक बड़ी टीम की कमी है।

राजनीतिक और सांगठनिक रिपोर्ट के मुताबिक देश के मज़दूर वर्ग के सामने सबसे बड़ी चुनौती अपना जुझारू देशव्यापी संगठन खड़ा करना है और आन्दोलन को अर्थवाद-सुधारवाद की चौहद्दी से बाहर लाना है। रिपोर्ट में संगठन को अधिक से अधिक फैलाने का आह्वान किया गया है और न सिर्फ़ लुधियाना बल्कि भविष्य में पूरे देश स्तर पर मज़दूरों के जुझारू संगठन क़ायम करने की ज़रूरत, शहरों-गाँवों के सभी मज़दूरों और अन्य काम धंधों में लगे मेहनतकशों के साथ एकजुटता क़ायम करने की तरफ़ आगे बढ़ने पर ज़ोर दिया गया है।

– बिगुल संवाददाता

शिवकाशी की घटना महज़ हादसा नहीं, मुनाफ़े के लिए की गयी हत्या है!!

पटाखा फैक्ट्री में आग से 54 मज़दूरों की मौत

5 सितम्बर को तमिलनाडु के शिवकाशी में पटाखा फैक्टरी में लगी आग से 54 मज़दूरों की मौत हो गई और 50 मज़दूर गम्भीर रूप से घायल हैं। पटाखे के केमिकल की वज़ह से आग फैक्टरी के 48 शेडों में इतनी तेज़ी से फैली कि मज़दूर फैक्टरी के भीतर ही फँस गये। जो मज़दूर किसी तरह बचकर बाहर आ पाये उन्होंने कहा कि उस समय फैक्टरी में करीब 300 मज़दूर काम रहे थे जिसमें से केवल सौ ही मज़दूरों की जानकारी मिली है। घटना के बाद आस-पास के मज़दूर जब फैक्टरी में अपने मज़दूर भाइयों की जान बचाने पहुँचे तो पुलिस उनसे मदद लेने की बजाय उनको खदेड़ती नज़र आयी। पुलिस-प्रशासन घटना में मज़दूरों की संख्या को कम से कम दिखाने के प्रयास में लगा हुआ है और हर औद्योगिक दुर्घटना की तरह यहाँ भी फैक्टरी मालिक फरार हैं।

हमेशा की तरह मीडिया शिवकाशी की घटना को महज़ एक हादसा बता रहा है। मगर यह वही मीडिया है जो मारुती सुज़ुकी में हिंसा की घटना में बिना जाँच के ही सारे मज़दूरों को "आंतकी" और "हत्यारा" बता रहा था। लेकिन जहाँ मालिकों के लालच के कारण पचास से ज़्यादा मज़दूर मौत के मुँह में धकेल दिये गये हैं तो उसे हादसा बताया जा रहा है। फ़रार मालिक अगर पकड़ में आ भी गया तो ज़्यादा से ज़्यादा उस पर लापरवाही का मुक़दमा दर्ज़ कर जुर्माना लगा दिया जायेगा। दूसरी तरफ़ उन 54 मज़दूरों के बच्चे अब दर-दर भटकने और भूख से दम तोड़ने को मज़बूर होंगे। शिवकाशी के मज़दूरों के अमानवीय हालात किसी से छिपे नहीं हैं। यहाँ करीब एक लाख मज़दूर पटाखा और माचिस कारख़ानों में बेहद ख़तरनाक हालात में काम करते हैं। इनमें हज़ारों छोटे-छोटे बच्चे भी हैं। न तो उनकी सुरक्षा का कोई इन्तज़ाम होता है और न ही दुर्घटना होने पर बचाव का। जब हादसा हो जाता है तो मुनाफ़े की हवस में अन्धे मालिक इन मज़दूरों को कारख़ानों के भीतर जलकर मरने के लिए छोड़कर भाग जाते हैं, और प्रशासन और पुलिस मृतकों को गायब करने और उनकी संख्या कम दिखाने में लग जाते हैं। सरकार घड़ियाली आँसू बहाते हुए कुछ मुआवज़ा देने और जाँच बैठाने की घोषणा करके अपना काम ख़त्म कर लेती है।

शिवकाशी की घटना कोई अकेली घटना नहीं है बल्कि रोज़ाना हर शहर के कारख़ानों में मज़दूर मुनाफ़े की बलि चढ़ रहे हैं। इसकी मिसाल पिछले साल दिल्ली की घटना है जब पीरागढ़ी और तुगलकाबाद में दो कारख़ानों में आग लगने से सौ से ज़्यादा मज़दूरों ने अपनी ज़िन्दगी गँवा दी लेकिन क़रीब दो साल बीतने के बाद भी आरोपियों को सज़ा नहीं मिली है। बादली के छोटे से औद्योगिक क्षेत्र में भी हर महीने कोई न कोई मज़दूर मारा जाता है और मुआवज़ा तक नहीं मिलता। कहने को तो देश में 160 श्रम क़ानून मौजूद हैं लेकिन सभी मज़दूर अपनी ज़िन्दगी से जानते हैं कि सारे क़ानून और श्रम विभाग मालिकों की जेब में रहते हैं। शिवकाशी का श्रम विभाग खुद ये मान रहा है कि न तो वहाँ आग से बचने के सुरक्षा उपकरण थे और न ही फैक्टरी में 300 मज़दूरों के काम करने की पर्याप्त जगह थी। तो क्या श्रम विभाग इतने समय से सो रहा था? हर साल यहाँ होने वाली दुर्घटनाओं में अब तक सैकड़ों मज़दूरों की मौत हो चुकी है लेकिन आज तक न तो किसी मालिक को सज़ा हुई और न ही सुरक्षा के इन्तज़ाम किये गये हैं। साफ़ है कि श्रम विभाग सिर्फ़ अपना दामन बचाने की कोशिश कर रहा है। शिवकाशी में पटाखों के 450 कारखानों में 40,000 से ज़्यादा मज़दूर काम करते हैं जिनको बुनियादी हक़ भी हासिल नहीं हैं।

शिवकाशी और आसपास के विरूद्ध नगर, सत्तूर क्षेत्र में करीब 1500 इकाइयों में जहाँ लाखों मज़दूर बेहद ख़राब और असुरक्षित स्थितियों में काम करते हैं, इनमें काफ़ी बड़ी संख्या बाल मज़दूरों की भी है। इस अँधेरगर्दी में सिर्फ़ स्थानीय प्रशासन और मालिकों की मिलीभगत नहीं हैं बल्कि इस ख़तरनाक पटाखा उद्योग की अमानवीय स्थितियों को राज्य और केन्द्र सरकार तक जानती है लेकिन पूँजी के ये चाकर मुनाफ़े की हवस में अपने हिस्सा पाने के लिए लाखों लोगों की जान गिरवी रख देते हैं। वैसे पटाखे उद्योग को 90 फीसदी उत्पादन शिवकाशी से होता है और हर बार काम की तेजी के समय यहाँ ये हादसे आम हो जाते हैं। पिछली कुछ रिपोर्ट के अनुसार यहाँ 12 वर्षों में 88 दुर्घटनाओं में 237 लोगों की जान गई हैं।

साथियो! रोज़-रोज़ होने वाली मौतों पर हम चुप रहते हैं। यह सोचकर कि ये तो किसी दूसरे शहर में हुई है, या फिर किसी दूसरे कारख़ाने में हुई है, इसमें हमारा क्या सरोकार है! मगर ये मत भूलो कि पूँजीवादी मुनाफ़ाखोरी का यह ख़ूनी खेल जब तक चलता रहेगा तब तक हर मज़दूर मौत के साये में काम करने को मजबूर है। अगर हम अपने मज़दूर साथियों की इन बेरहम हत्याओं पर इस पूँजीवादी व्यवस्था और पूँजीपति वर्ग के ख़िलाफ़ नफ़रत से भर नहीं उठते, बग़ावत की आग से दहकते नहीं, तो हमारी आत्माएँ मर चुकी हैं! तो हम भी ज़िम्मेदार हैं अपने मज़दूर भाइयों की मौत के लिए – क्योंकि जुर्म को देखकर जो चुप रहता है वह भी मुज़रिम होता है!

साथियो! शिवकाशी के हमारे बेगुनाह मारे गये मज़दूर साथी हमसे पूछ रहे हैं: कब तक हम यूँ ही तिल-तिलकर मरने को जीना समझते रहेंगे? कब मिलेगा उन्हें इंसाफ़? कब होगा इस हत्यारी व्यवस्था का ख़ात्मा? क्या हम अपने बच्चों को यही गुलामों-सी ज़िन्दगी देकर जायेंगे? अब यह समझ लेना होगा कि इस आदमख़ोर व्यवस्था की मौत ही हमारे जीने की शर्त है। एकजुट होने और लड़ने में हम जितनी ही देर करेंगे, हमारे चारों ओर मौत का शिकंजा उतना ही कसता जायेगा।

● अजय

मारिकाना में बर्बर पुलिस फायरिंग में 34 खदान मज़दूरों की मौत

जनता की लूट और दमन में दक्षिण अफ़्रीका के नये शासक गोरे मालिकों से पीछे नहीं

पिछले 16 अगस्त को दक्षिण अफ़्रीका के मारिकाना में खदान मज़दूरों पर हुई बर्बर पुलिस फायरिंग ने रंगभेदी शासन के दिनों में होने वाले जुल्मों की याद ताज़ा कर दी। इस घटना ने साफ़ तौर पर यह दिखा दिया कि 1994 में गोरे शासकों से आज़ादी के बाद सत्ता में आये काले शासक लूट-खसोट और दमन-उत्पीड़न की उसी परम्परा को जारी रखे हुए हैं। सत्तारूढ़ अफ़्रीकी नेशनल कांग्रेस (ए.एन.सी.) की 'काले लोगों के सशक्तीकरण की योजना' का कुल मतलब काले लोगों की आबादी में से एक छोटे-से हिस्से को अमीर बनाकर पूँजीपतियों और अभिजातों की क़तार में शामिल करना है। बहुसंख्यक काली आबादी आज भी घनघोर ग़रीबी, बेरोज़गारी, अपमान और उत्पीड़न में ही घिरी हुई है।

मारिकाना में मारे गये मज़दूर अपने हज़ारों साथियों के साथ पिछले कई दिनों से हड़ताल पर थे। वे प्लेटिनम की खदानों में काम करते थे जिसकी मालिक ब्रिटिश कम्पनी लोनमिन है। यह दुनिया की तीसरी सबसे बड़ी प्लेटिनम खनन कम्पनी है। बेहद ख़राब स्थितियों में और बहुत ही कम मज़दूरी पर काम करने वाले इन मज़दूरों की हालत में आज़ादी के बाद के पिछले दो दशकों में कोई भी बदलाव नहीं आया है। लगातार बढ़ती महँगाई की वजह से वे काफ़ी समय से मज़दूरी बढ़ाने की माँग कर रहे थे। मगर सरकार और पुलिस की भरपूर मदद से कम्पनी उनके हर विरोध को अनसुना करती आ रही थी जिससे मज़दूरों का गुस्सा लगातार बढ़ रहा था। 16 अगस्त को मज़दूरों के एक उग्र प्रदर्शन पर पुलिस ने अन्धाधुन्ध गोलियाँ चलायीं जिसमें कम से कम 34 मज़दूर मारे गये और क़रीब 80 बुरी तरह घायल हो गये। पुलिस और सरकार का कहना है कि अलग-अलग यूनियनों से जुड़े मज़दूरों के बीच झड़पों को रोकने के लिए उसे गोली चलानी पड़ी। लेकिन यह तर्क किसी के गले नहीं उतर रहा। कम्पनी के भाड़े के गुण्डों की तरह काम कर रही पुलिस के स्थानीय प्रमुख ने दो दिन पहले ही मज़दूरों को धमकी देते हुए कहा था कि वह दिन (प्रदर्शन का दिन) उनके लिए "क़यामत का दिन" साबित होगा और उन्हें हमेशा के लिए कुचल दिया जायेगा।

पुलिस ही नहीं, सत्तारूढ़ पार्टी ए.एन.सी. का भी कम्पनी को पूरा समर्थन था। ए.एन.सी. से जुड़ी नेशनल यूनियन ऑफ माइन वर्कर्स (एन.यू.एम.) हड़ताल तोड़ने के लिए मैनेजमेण्ट के साथ मिलकर काम कर रही थी। सत्ता में आने के बाद से ही एन.यू.एम. अपना जुझारू चरित्र खोकर पूरी तरह समझौतापरस्त और दलाल क़िस्म की यूनियन बन चुकी है जिसका एक ही मक़सद है, मज़दूरों को बरगला-फुसलाकर पूँजीपतियों की गुलामी करते रहने के लिए तैयार रखना और उनके असन्तोष पर पानी के छींटे मारते रहना। इस समझौतापरस्ती से बिदककर मज़दूरों का एक बड़ा हिस्सा हाल के वर्षों में एन.यू.एम. से अलग हो चुका है और ए.यू.एन.एम. नाम की नयी यूनियन की खदान मज़दूरों में लोकप्रियता तेज़ी से बढ़ रही है। इसी वजह से अक्सर दोनों यूनियनों के बीच टकराव भी होते रहे हैं। मगर कुछ जुझारू अर्थवादी लड़ाइयों के अलावा इस दूसरी यूनियन के पास भी पूँजीवादी लूट और शोषण के ख़िलाफ़ कोई दूरगामी वैकल्पिक कार्यक्रम नहीं है और ट्रेड यूनियन नौकरशाही का इसमें भी बोलबाला है। इस वजह से मज़दूरों की एक भारी आबादी का इन दोनों ही यूनियनों से मोहभंग हो रहा है और जगह-जगह मज़दूरों के उग्र आन्दोलन उभर रहे हैं। मारिकाना की घटना के बाद भी दक्षिण अफ़्रीका में मज़दूरों पर गोलीबारी की दो घटनाएँ हो चुकी हैं और एक बड़ी सोना खदान में हज़ारों मज़दूरों की हड़ताल जारी है।

खनन उद्योग दक्षिण अफ़्रीका की अर्थव्यवस्था का प्रमुख आधार है। यहाँ सोना, हीरा, प्लेटिनम, क्रोमियम, पैलेडियम और कई अन्य बहुमूल्य खनिजों के विशाल भण्डार मौजूद हैं। दुनिया के प्लेटिनम का 80 प्रतिशत भण्डार इक्षिण अफ़्रीका में है और वह सोने का चौथा सबसे बड़ा निर्यातक है। रंगभेदी शासन के दौरान पूरे खनन उद्योग पर बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का क़ब्ज़ा था जो आज़ादी के बाद भी बना रहा। गोरों की गुलामी से लम्बी लड़ाई लड़ने वाली जनता को उम्मीद थी कि आज़ादी के बाद देश की सम्पदा के इन बहुमूल्य संसाधनों का राष्ट्रीकरण किया जायेगा लेकिन सत्ता में आने वाले नये काले शासकों ने पुरानी पूँजीवादी नीतियों को ही क़ायम रखा और देश की खनिज सम्पदा तथा मज़दूरों की मेहनत की लूट की खुली छूट चलती रही। इसके एवज में काले लोगों की एक छोटी-सी जमात को लुटेरे पूँजीपतियों की क़तार में शामिल होने का मौका मिल गया। ए.एन.सी. और उससे जुड़ी यूनियनों के नेता भी इसमें पीछे नहीं थे। एन.यू.एम. के संस्थापकों में से एक सिरिल रामफोसा आज दक्षिण अफ़्रीका के सबसे अमीर लोगों में से एक हैं और कई खनन कम्पनियों में उनके शेयर हैं।

दक्षिण अफ़्रीका की अर्थव्यवस्था बहुत हद तक पश्चिमी देशों पर निर्भर है और वहाँ के आर्थिक संकट का सीधा असर यहाँ भी पड़ रहा है। एक तरफ़ दक्षिण अफ़्रीका तीसरी दुनिया की सबसे विकसित अर्थव्यवस्थाओं में से एक है, दूसरी तरफ़ यह दुनिया का सर्वाधिक ग़ैरबराबरी वाला समाज बन चुका है। देश की कुल आमदनी का 60 प्रतिशत से भी अधिक केवल 10 प्रतिशत लोगों के हाथों में है और नीचे की 50 प्रतिशत आबादी के हिस्से में देश की आमदनी का केवल 8 प्रतिशत आता है। एक प्रमुख दक्षिणी अफ़्रीकी पत्रिका के अनुसार तो देश की कुल सम्पदा का 62 प्रतिशत केवल 100 व्यक्तियों के क़ब्ज़े में है। आधी से अधिक आबादी ग़रीबी रेखा के नीचे है और 25 प्रतिशत लोग बेरोज़गार हैं, हालाँकि कुछ विशेषज्ञों के अनुसार बेरोज़गारी 40 प्रतिशत है। देश की 5 करोड़ की आबादी में से आधी से अधिक झुग्गी-झोपड़ियों या देहात की बेहद खस्ताहाल बस्तियों में रहती है।

दरअसल दक्षिण अफ़्रीका की कहानी भारत जैसे उन देशों की कहानी से अलग नहीं है जो जनता के संघर्षों और अकूत क़ुर्बानियों के दम पर उपनिवेशवाद की गुलामी से तो आज़ाद हुए लेकिन पूँजी की गुलामी से आज़ाद नहीं हुए। दक्षिण अफ़्रीका में भी जनता की मुक्ति का एक ही रास्ता है जो पूँजीवाद को मिटाकर समाजवाद की ओर जाता है। मारिकाना जैसे गोलीकाण्डों में बहा मज़दूरों का लहू दक्षिण अफ़्रीका के नये शासकों को बहुत भारी पड़ेगा।

● मुकेश

साल–दर–साल मज़दूरों को लीलती मेघालय की नरभक्षी कोयला खदानें

जुलाई के दूसरे सप्ताह में राष्ट्रीय समाचारपत्रों के पिछले पन्नों पर एक छोटी-सी ख़बर आयी कि मेघालय की दक्षिण गारो पहाड़ियों में स्थित नांगलबिब्रा गाँव की कोयला खदान में पानी भर जाने से 30 मज़दूर खदान के अन्दर ही फँसे रह गये। कुछ दिनों बाद ख़बर आयी कि उनमें से 15 मज़दूर तो किसी तरह बचकर बाहर निकलने में क़ामयाब हो गये लेकिन अन्य 15 मज़दूरों का कोई अता-पता नहीं। ख़बर यह भी आयी कि बाकी 15 मज़दूरों को बचाने के लिए राष्ट्रीय आपदा प्रतिक्रिया बल की एक टीम वहाँ गयी लेकिन कुछ दिनों बाद इस टीम ने भी हाथ खड़े कर दिये। यानी कि वे 15 मज़दूर मौत के मुँह में समा गये। रोंगटे खड़े कर देने वाली यह घटना, ऐसी कोई अकेली घटना नहीं है। दुनिया भर में खदान मज़दूरों के साथ इस किस्म की घटनाएँ अक्सर सुनने में आती रही हैं। लेकिन फिर भी मुनाफ़े की सनक में डूबी पूँजीवादी सत्ताएँ इन घटनाओं के रोकने के लिए कोई कारगर क़दम नहीं उठातीं।

जब तक इस क़िस्म का कोई हादसा नहीं होता तब तक खदान मज़दूरों की काली-अँधेरी और घुटन तथा सन्नाटे से भरी ज़िन्दगी पूँजीवादी विकास की चकाचौंध और शोरगुल के पीछे मानो गुम-सी हो जाती है। वैसे तो खदानों में काम कर रहे मज़दूरों की स्थिति आम तौर पर ख़तरनाक ही होती है लेकिन मेघालय की गारो और जैंतिया पहाड़ियों में स्थित कोयला खदानों की हालत दिल दहला देने वाली है। उनकी हालत जानने के बाद यह कल्पना करना मुश्किल हो जाता है कि कोई इंसान इतने घुटन भरे काले-अंधेरे और सुनसान माहौल में रोज़ आठ से दस घण्टे काम कर सकता है। मेघालय की ये खदानें इतनी सँकरी और तंग हैं कि उनमें कोई इंसान खड़े होकर तो क्या बैठ कर भी नहीं जा सकता। मज़दूर इन खदानों में रेंगते हुए घुसते हैं और एक हथौड़ी और टार्च की मदद से लेटे-लेटे ही चट्टानों से कोयला निकालते हैं। इन खदानों के सँकरेपन की वजह से ही इन्हें चूहे के बिलनुमा खदानें (रैट होल माइन्स) कहा जाता है। इन खदानों में अक्सर ही चट्टानों के गिरने से और पानी भर जाने से मज़दूर अपनी जान गँवा बैठते हैं। जो मज़दूर ज़िन्दा बच पाते हैं वो कोयले की धूल और खदानों में मौजूद ज़हरीली गैसों की वजह से साँस की तमाम बीमारियों की चपेट में आ जाते है। जब तक ऐसे हादसे जैसी कोई भयानक घटना नहीं घटती, तब तक ये खदानें और उनमें काम करने वाले मज़दूर अख़बारों के पिछले पन्नों में भी जगह नहीं पाते।

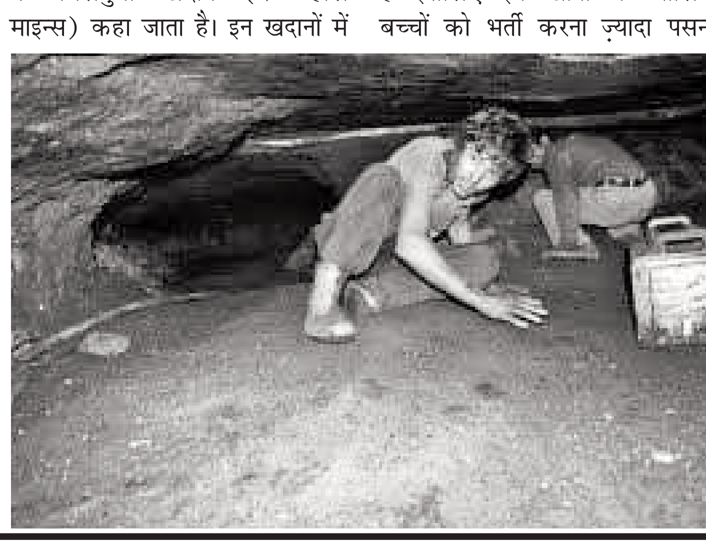

मेघालय की इन नरभक्षी खानों की एक और ख़ौफ़नाक हक़ीक़त यह है कि इनमें भारी संख्या में बच्चों से खनन करवाया जाता है। चूंकि सँकरी और तंग खदानों में बालिगों की बजाय बच्चों का जाना आसान होता है इसलिए इन खानों के मालिक बच्चों को भर्ती करना ज़्यादा पसन्द करते हैं। ऊपर से राज्य सरकार के पास इस बात का कोई ब्योरा तक नहीं है कि इन खदानों में कुल कितने खनिक काम करते हैं और उनमें से कितने बच्चे हैं। 'तहलका' पत्रिका में छपे एक लेख के मुताबिक मेघालय की खानों में कुल 70,000 खनिकों ऐसे हैं जिनकी उम्र 18 वर्ष से कम है और इनमें से कई तो 10 वर्ष से भी कम उम्र के हैं। सरकार और प्रशासन ने इस तथ्य से इंकार नहीं किया है। गौरतलब है कि केंद्र के खनन क़ानून 1952 के अनुसार किसी भी खदान में 18 वर्ष से कम उम्र के नागरिकों से काम कराना मना है। यानी कि अन्य क़ानूनों की तरह इस क़ानून की भी खुले आम धज्जियाँ उड़ायी जा रही हैं। यही नहीं इन खानों में काम करने के लिए झारखंड, बिहार, उड़ीसा, नेपाल और बांगलादेश से ग़रीबों के बच्चों को ग़ैर क़ानूनी रूप से मेघालय ले जाने का व्यापार भी धड़ल्ले से जारी है।

इन खदानों से रोज़ाना लाखों मीट्रिक टन कोयला निकाला जाता है जिसकी क़ीमत करोड़ों में होती है। कोयला खदानें मेघालय राज्य के राजस्व का मुख्य स्रोत हैं। ग़ौरतलब है कि राज्य में खनन सम्बन्धी कोई नीति नहीं है और वहाँ की खानों पर सरकारी नहीं बल्कि निजी मालिकाना है। ये निजी मालिक ज़्यादा से ज़्यादा मुनाफ़ा कमाने के लिए सभी श्रम क़ानूनों और बाल मज़दूरी विरोधी क़ानून को ताक पर रखकर खनिकों का घोर शोषण करते हैं। खनिकों की ख़तरनाक परिस्थितियों के बावजूद उनकी सुरक्षा सम्बन्धी कोई इंतज़ामात नहीं किये जाते है। मेघालय में खनन एक असंगठित लघु उद्योग है जहाँ खानों के मालिक अपनी बेहिसाब मुनाफ़ा पीटने के लिए क़ानूनन नहीं बल्कि अपनी मनमर्जी से खनन करवाते हैं। जैसा कि अक्सर होता है सरकार, प्रशासन और मालिकों की मिलीभगत से शोषण का ये गंदा खेल बदस्तूर ज़ारी है। इस प्रकार की खदानों की अवैज्ञानिकता और इनके जानलेवा चरित्र के स्थापित हो जानने के बावजूद केंद्र और राज्य सरकारें इनके हालात को सुधारने की कोई कार्रवाही नहीं करते।

पूँजीवाद का इतिहास हमें बताता है कि इसकी विकास यात्रा धरती के ऊपर मज़दूरों, किसानों और आदिवासियों के ख़ून से लथपथ होती है, और धरती के भीतर खनिकों के ख़ून से भी सराबोर होती है। पूँजीवाद की इस ख़ूनी यात्रा का अन्त तभी सम्भव होगा जब धरती के ऊपर और धरती के भीतर काम करने वाले सभी मेहनतकशों की फ़ौलादी एकता की ताक़त से इसे धरती के भीतर गहरी क़ब्र खोदकर गाड़ दिया जायेगा।

● आनन्द सिंह

माँगपत्रक शिक्षणमाला – 12

बाल मज़दूरी और जबरिया मज़दूरी के हर रूप का ख़ात्मा मज़दूर आन्दोलन की एक अहम माँग है

मज़दूर माँगपत्रक–2011 की अन्य माँगों – न्यूनतम मज़दूरी, काम के घण्टे कम करने, ठेका के ख़ात्मे, काम की बेहतर तथा उचित स्थितियों की माँग, कार्यस्थल पर सुरक्षा और दुर्घटना की स्थिति में उचित मुआवज़ा, प्रवासी मज़दूरों के हितों की सुरक्षा, स्त्री मज़दूरों की विशेष माँगों, ग्रामीण व खेतिहर मज़दूरों, घरेलू मज़दूरों, स्वतंत्र दिहाड़ी मज़दूरों की माँगों के बारे में विस्तार से जानने के लिए 'मज़दूर बिगुल' के पिछले अंक ज़रूर पढ़ें। – सम्पादक

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन (आई.एल.ओ.) की हाल की रिपोर्ट के अनुसार, पूरी दुनिया में 5 से 17 वर्ष के बीच की उम्र के लगभग 25 करोड़ बाल मज़दूर हैं। पर वास्तविक तस्वीर इससे कहीं अधिक भयंकर है। स्वयं आई.एल.ओ. भी स्वीकार करता है कि दस वर्ष से कम उम्र के बाल श्रमिकों और घरों में नौकरानी के रूप में काम कर रही लड़कियों की सही संख्या के बारे में कोई जानकारी उपलब्ध नहीं है। अकेले दक्षिण एशिया में 20 करोड़ से अधिक बाल श्रमिक हैं। विश्व के कुल बाल मज़दूरों का करीब 40 प्रतिशत सिर्फ दक्षिण एशियाई देशों में हैं। भारत सरकार के आँकड़ों के अनुसार देश में 2 करोड़ बाल मज़दूर हैं। ग़ैर-सरकारी संगठनों का कहना है देश में 5 से 14 वर्ष की उम्र के 6 करोड़ से अधिक बाल मज़दूर अपना बचपन गला रहे हैं। लेकिन कुछ संगठनों के अनुसार अगर घर में रहकर काम करने वाले बच्चों और स्कूल जाने के साथ-साथ घरेलू उद्योगों में काम करने वाले बच्चों को भी जोड़ लिया जाये तो यह संख्या 10 करोड़ तक हो सकती है। कुछ बच्चों को 18 घण्टे रोज़ तक काम करने के लिए मज़बूर किया जाता है, और अक्सर तो उन्हें फ़ैक्ट्री या काम की जगह से बाहर ही नहीं निकलने दिया जाता।

गाँवों या दूर-दराज के इलाक़ों से मज़दूरी कराने लाये गये बच्चों को अक्सर बँधुआ बनाकर बेच दिया जाता है। नेपाल के ग्रामीण इलाक़ों से छोटी लड़कियों को कालीन उद्योग में काम दिलाने के बहाने भारत लाया जाता है और यहाँ उन्हें वेश्यावृत्ति कराने वाले गिरोहों के हाथों बेच दिया जाता है। 'तहलका' पत्रिका के जुलाई 2012 के अंक में छपी एक रिपोर्ट बताती है कि बिहार और पूर्वी उत्तर प्रदेश से अगवा किये गये सैकड़ों बच्चों से पश्चिम उत्तर प्रदेश के धनी किसानों के खेतों में काम कराया जा रहा है।

आई.एल.ओ. की रिपोर्ट के अनुसार, भारत, पाकिस्तान और बंगलादेश सहित दक्षिण एशियाई देशों में 10 से 14 वर्ष के बीच की उम्र के बाल मज़दूरों की संख्या का प्रतिशत सबसे ज़्यादा है। विश्व में कम से कम पन्द्रह करोड़ बच्चे खदानों में, कालीन और माचिस उद्योग आदि में गुलामों की ज़िन्दगी बसर करते हैं। करोड़ों दूसरे बच्चे बूट पालिश, घरेलू नौकर और कूड़ा बीनने का काम करते हैं या ढाबों-होटलों में बारह से लेकर सोलह घण्टे तक काम करते हैं। लड़के-लड़कियों – दोनों में ही बाल वेश्याओं की संख्या लगातार बढ़ती जा रही है।

कम्प्यूटर, संचार क्रान्ति, सूचना क्रान्ति, जेनेटिक इंजीनियरिंग आदि के जिस युग में खुली बाज़ार व्यवस्था को पूरी दुनिया में स्थापित करके विकास की नयी ऊँचाइयाँ छूने के दावे किये जा रहे हैं, उसी युग में बच्चों को नर्क के अँधेरे रसातल में जीने के लिए कौन बाध्य कर रहा है?

बाल मज़दूरी की समस्या कोई नयी नहीं है जो आज के दौर में पैदा हुई हो। पूँजीवादी वैभव का पूरा अम्बार बच्चों और स्त्रियों के ख़ून और पसीने में लिथड़ा हुआ है। उसका एक बड़ा हिस्सा उनके सस्ते श्रम को निचोड़कर तैयार किया गया है। 'सस्ता से सस्ता ख़रीदना और मँहगा से मँहगा बेचना' – यह पूँजीवाद का मूल मंत्र है। कच्चा माल और मानव-श्रम पूँजीपति सस्ता से सस्ता ख़रीदता है और अपना माल बाज़ार में महँगा से महँगा बेचता है और इस प्रक्रिया में मज़दूरों के श्रम का बड़ा से बड़ा हिस्सा निचोड़कर पूँजी का अम्बार खड़ा करता है। कम से कम समय में ज़्यादा से ज़्यादा उत्पादन करके मज़दूर के ज़्यादा से ज़्यादा अतिरिक्त श्रम को निचोड़ने के लिए वह नयी से नयी मशीनों का इस्तेमाल करता है, जिन पर काम करने वाला मज़दूर बहुत कम समय में ही अपने गुज़ारे के लिए मिलने वाली पगार के बराबर मूल्य का उत्पादन कर लेता है और बाकी समय में वह जो पैदा करता है, उसकी बिक्री से मिलने वाली रकम अतिरिक्त मूल्य होती है। इस तरह मुनाफ़ा बढ़ाने के लिए पूँजीपति उन्नत और आधुनिक मशीनें लाता है, जिस पर मज़दूरों की एक छोटी तादाद ही बहुत अधिक उत्पादन कर लेती है। मज़दूरों की शेष आबादी काम से बाहर कर दी जाती है। 'औद्योगिक बेरोज़गारों की इस रिज़र्व सेना' की बढ़ती आबादी मज़दूरों की मोल-तोल की क्षमता कम करती जाती है और नतीजतन मज़दूरी की दर नीचे हो जाती है।

बड़े पैमाने पर बेरोजगार और छँटनीशुदा मेहनतकश अपना श्रम सस्ती से सस्ती दरों पर बेचने के लिए मजबूर हो जाते हैं। उन्हें जब कोई काम नहीं मिलता तो मजबूर होकर वे अपनी स्त्रियों और बच्चों को भी किसी तरह के काम की तलाश में भेजते हैं जिनका श्रम ठेकेदारों, कारख़ानेदारों, व्यापारियों और तरह-तरह के घरेलू कामों के लिए अमीर लोगों को मिट्टी के मोल हासिल हो जाता है। बड़े उद्योगों में संगठित मज़दूरों को जो सुविधाएँ देने और जिन सेवा शर्तों को मानने के लिए पूँजीपतियों को बाध्य होना पड़ता है, उन सुविधाओं और उन सेवा शर्तों के बिना ही छोटे-छोटे वर्कशापों में, असंगठित क्षेत्र में मज़दूरों, ख़ासकर स्त्रियों और बच्चों के सस्ते श्रम को निचोड़ने का काम सम्पन्न हो जाता है। उदारीकरण के दौर में पूरी दुनिया में जो नीतियाँ लागू की जा रही हैं, उनके तहत अब छोटे-बड़े सभी कारख़ानों में 90 प्रतिशत से ज़्यादा काम ऐसे मज़दूरों से कराये जा रहे हैं जिन्हें किसी तरह की कोई सामाजिक सुरक्षा नहीं मिलती, जिनके लिए सारे श्रम क़ानून बेमानी हैं। ऐसे में, बच्चों के श्रम की लूट और भी आसान और बेरोकटोक हो गयी है।

आज स्थिति यह है कि मज़दूरों के संगठित दबाव से बचने के लिए और उनके श्रम को अत्यन्त सस्ती दरों पर ख़रीदने के लिए बड़ी-बड़ी देशी-विदेशी कम्पनियाँ भी कम्प्यूटर चिप्स और इलेक्ट्रॉनिक सामानों जैसे अत्याधुनिक चीज़ों के उत्पादन की प्रक्रिया को भी कई हिस्सों में तोड़कर छोटी-छोटी कुटीर उद्योग या घरेलू उद्योगनुमा इकाइयों में बिखरा दे रही है जहाँ ज़्यादा काम ठेके पर कराया जाता है और जिनमें स्त्रियाँ और बच्चे बेहद कम मज़दूरी पर दस-दस, बारह-बारह घण्टे काम करते हैं।

बड़ी संख्या में बेरोज़गार मज़दूरों और अपनी जगह-जमीन से उजड़कर सर्वहारा की कतारों में शामिल होते जा रहे ग़रीब व मध्यम किसानों के परिवार जब अपने बच्चों का पेट नहीं पाल पाते, तो बूट पालिश करने, कूड़ा बीनने तथा वर्कशापों और ढाबों- चायखानों-होटलों में काम करने के लिए अपने बच्चों को भेजने के अलावा उनके पास कोई रास्ता नहीं रहता, क्योंकि दूसरा रास्ता उनके पास सिर्फ़ भुखमरी का ही होता है। इस स्थिति का भी लाभ पूँजीपति एक और ढंग से उठाते हैं। वे बालिग मज़दूरों को तो काम नहीं देते, पर औरतों और बच्चों को काम दे देते हैं, क्योंकि उनसे बहुत कम पैसे देकर अधिक काम लिया जा सकता है।

स्वयंसेवी संस्थाएँ, अंतरराष्ट्रीय संगठन और कैलाश सत्यार्थी के 'बचपन बचाओ आन्दोलन' जैसे मुहिम के कर्ताधर्ता प्रायः जब बाल मज़दूरी के ख़िलाफ़ आवाज़ उठाते हैं तो वे ग़रीबों को ही यह उपदेश पिलाते हैं कि वे अपने बच्चों को काम पर भेजकर उनका बचपन तबाह करने की जगह उन्हें पाठशालाओं में पढ़ने के लिए भेजें। दूरदर्शन पर सरकार भी यही प्रचार दिखाती है कि बच्चों के हाथ में काम के औज़ार नहीं खिलौने और किताबें होनी चाहिए। 'सेव द चिल्ड्रेन' और 'क्राई' जैसी स्वयंसेवी संस्थाएँ और यूनीसेफ़ एवं यूनेस्को जैसी संयुक्त राष्ट्रसंघ की एजेंसियाँ भी ग़रीब माता-पिता को ही झाड़ पिलाती नजर आती हैं कि वे शिक्षा का महत्व नहीं समझते और अपने बच्चों को काम पर लगा देते हैं।

इन सारी नसीहतों का निचोड़ यह होता है कि बाल-मज़दूरी के अभिशाप की ज़िम्मेदारी ग़रीब माँ-बाप के स्वार्थ, अमानवीयता और पिछड़ेपन की है। पूरे समाज के पूँजीवादी ढाँचे को कहीं भी कठघरे में नहीं खड़ा किया जाता और किसिम-किसिम के समाधानों और चमकदार योजनाओं से समस्या को ढँक दिया जाता है। इससे ज़्यादा घृणास्पद और ग़रीब मेहनतकशों के लिए अपमानजनक बात कुछ और हो ही नहीं सकती।

एक ग़रीब माँ-बाप अपने बच्चे से मज़दूरी इसलिए नहीं करवाते कि वे उन्हें प्यार नहीं करते या कि वे कामचोर होते हैं। वे उन्हें इसलिए गुलामी के उस भयंकर नर्क में भेजते हैं कि वे ख़ुद उनका पेट नहीं भर सकते और भूख की जलती आग में झुलसकर मरने देने के बजाय वे अपने बच्चों के ज़िन्दा रहने के एकमात्र विकल्प को चुनना पसन्द करते हैं। कई ग़रीब माँ-बाप अगर ख़ुद काम नहीं करते और अपने बच्चों की कमाई खाते हैं तो यह उनकी मज़बूरी है न कि स्वार्थ या शौक़। अगर कुछेक ग़रीब माँ-बाप ऐसे हैं भी, तो इसके दोषी वे ख़ुद नहीं, यह सामाजिक व्यवस्था है जिसने उनका इस कदर अमानवीकरण कर डाला है। "बचपन बचाने" का दावा करने तरह-तरह के लोगों से पूछा जाना चाहिए कि उनके अभियानों से क्या इस देश के करोड़ों मज़दूर और बँधुआ बच्चों की ज़िन्दगी मुक्त हो सकती है? अगर ऐसे अभियानों से सभी मज़दूर बच्चों को एकबारगी मुक्ति मिल भी जाये तो लुटेरी पूँजीवादी नीतियाँ क्या उनकी जगह भरने के लिए बेघर-बेबस लोगों के उतने ही बच्चों को नहीं ला खड़ा करेंगी? क्या महज़ कुछ कारखानों-खदानों से बाल मज़दूरों को मुक्त कराते रहने से बाल मज़दूरी के काले कलंक से मानवता मुक्त हो सकेगी? क्या इन नये मसीहाओं ने सोचा है कि लाखों बाल मज़दूर भी यदि मुक्त हो जायें तो वे क्या खायेंगे, क्या पहनेंगे और किस स्कूल में पढ़ेंगे? देर-सबेर वे उसी दुश्चक्र में जा फँसेंगे, क्योंकि तमाम स्वयंसेवी संस्थाओं के ख़ैरात से उन सबकी परवरिश नहीं सम्भव होगी। उनके माँ-बाप की यदि इतनी क्षमता होती तो वे बाल मज़दूरी करने को मज़बूर ही नहीं होते। आख़िर ये तमाम 'सान्ता क्लाज़' बच्चों को बँधुआ बनाने वाली असली ताक़तों की तरफ़ उँगली क्यों नहीं उठाते? बाल मज़दूरों की मुक्ति के लिए करोड़ों रुपये खर्च करके प्रचार अभियान चलाने और यहाँ-वहाँ से कुछ दर्जन बच्चों को मुक्त कराकर मीडिया में फ़ोटो चमकाने के अतिरिक्त अपनी ताक़त का एक छोटा-सा हिस्सा भी ये लोग साम्राज्यवाद और पूँजीवाद के विरुद्ध जनता को संगठित करने पर क्यों नहीं खर्च करते?

दरअसल, हर पूँजीवादी व्यवस्था को भ्रम पैदा करने के लिए, अपनी असलियत पर पर्दा डालने के लिए और जन असन्तोष के दबाव को कम करते रहने वाले सेफ्टी-वॉल्व के रूप में कुछ सुधारवादियों की ज़रूरत पड़ती ही रहती है। साम्राज्यवादियों के पैसे से चलने वाली स्वयंसेवी संस्थाएँ और सुधारवादी संगठन तथा सरकार के सुधार कार्यक्रम यही करते हैं। यूनिसेफ, यूनेस्को, आई.एल.ओ. आदि भी यह काम करते हैं। बाल-मज़दूरी विरोधी सुधारवादी चिल्ल-पों के पीछे भी यही दूरदृष्टि काम कर रही है। "बचपन बचाओ" का डिटर्जेण्ट वास्तव में इस पूँजीवादी व्यवस्था के दामन पर लगे बच्चों के ख़ून के धब्बों को रगड़-रगड़ कर धोने का काम कर रहा है। उसका मक़सद इस व्यवस्था को नष्ट करने के उद्यम में लगकर वास्तव में बाल-मज़दूरी का समूल नाश करना नहीं है, बल्कि इसका दिखावा करके इस व्यवस्था के बारे में भ्रम पैदा करना है, जनता की चेतना का क्रान्तिकारीकरण करने के बजाय उसे भोथरा बनाना है।

बाल मज़दूरी के मुद्दे को पूरी आबादी के रोज़गार और समान एवं सर्वसुलभ शिक्षा के मूलभूत अधिकार के लिए संघर्ष से अलग करके देखा ही नहीं जा सकता । जो व्यवस्था सभी हाथों को काम देने के बजाय करोड़ों बेरोज़गारों की विशाल फ़ौज में हर रोज़ इज़ाफ़ा कर रही है, जिस व्यवस्था में करोड़ों मेहनतकशों को दिनो-रात खटने के बावजूद न्यूनतम मज़दूरी तक नहीं मिलती, उस व्यवस्था के भीतर से लगातार बाल-मज़दूरों की अन्तहीन क़तारें निकलती रहेंगी। उस व्यवस्था पर ही सवाल उठाये बिना बच्चों को बचाना सम्भव नहीं, बाल मज़दूरों की मुक्ति सम्भव नहीं।

तो क्या जब तक पूँजीवाद ख़त्म नहीं होगा, तब तक बाल मज़दूरी ख़त्म करने की कोशिशें छोड़ देनी चाहिए? कतई नहीं, बल्कि इन्हें

(पेज 2 पर जारी)

पेरिस कम्यून : पहले मज़दूर राज की सचित्र कथा (छठी किश्त)

आज भारत ही नहीं, पूरी दुनिया के मज़दूर पूँजी की लुटेरी ताक़त के तेज़ होते हमलों का सामना कर रहे हैं, और मज़दूर आन्दोलन बिखराव, ठहराव और हताशा का शिकार है। ऐसे में इतिहास के पन्ने पलटकर मज़दूर वर्ग के गौरवशाली संघर्षों से सीखने और उनसे प्रेरणा लेने की अहमियत बहुत बढ़ जाती है। आज से 141 वर्ष पहले, 18 मार्च 1871 को फ्रांस की राजधानी पेरिस में पहली बार मज़दूरों ने अपनी हुकूमत क़ायम की। इसे पेरिस कम्यून कहा गया। उन्होंने शोषकों की फैलायी इस सोच को ध्वस्त कर दिया कि मज़दूर राज-काज नहीं चला सकते। पेरिस के जाँबाज़ मज़दूरों ने न सिर्फ़ पूँजीवादी हुकूमत की चलती चक्की को उलटकर तोड़ डाला, बल्कि 72 दिनों के शासन के दौरान आने वाले दिनों का एक छोटा-सा मॉडल भी दुनिया के सामने पेश कर दिया कि समाजवादी समाज में भेदभाव, ग़ैर-बराबरी और शोषण को किस तरह ख़त्म किया जायेगा। आगे चलकर 1917 की रूसी मज़दूर क्रान्ति ने इसी कड़ी को आगे बढ़ाया।

मज़दूर वर्ग के इस साहसिक कारनामे से फ्रांस ही नहीं, सारी दुनिया के पूँजीपतियों के कलेजे काँप उठे। उन्होंने मज़दूरों के इस पहले राज्य का गला घोंट देने के लिए एड़ी-चोटी का ज़ोर लगा दिया और आख़िरकार मज़दूरों के कम्यून को उन्होंने ख़ून की नदियों में डुबो दिया। लेकिन कम्यून के सिद्धान्त अमर हो गये। पेरिस कम्यून की हार से भी दुनिया के मज़दूर वर्ग ने बेशक़ीमती सबक़ सीखे। पेरिस के मज़दूरों की कुर्बानी मज़दूर वर्ग को याद दिलाती रहती है कि पूँजीवाद को मटियामेट किये बिना उसकी मुक्ति नहीं हो सकती।

'मज़दूर बिगुल' के मार्च 2012 अंक से हम दुनिया के पहले मज़दूर राज की सचित्र कथा की शुरुआत की है, जो अगले कई अंकों में जारी रहेगी।

इस शृंखला की शुरुआती कुछ किश्तों में हमने पेरिस कम्यून की पृष्ठभूमि के तौर पर जाना कि पूँजी की सत्ता के ख़िलाफ़ मज़दूरों ने किस तरह लड़ना शुरू किया और किस तरह चार्टिस्ट आन्दोलन और 1848 की क्रान्तियों से गुज़रते हुए मज़दूर वर्ग की चेतना और संगठनबद्धता आगे बढ़ती गयी। हमने मज़दूरों की मुक्ति की वैज्ञानिक विचारधारा के विकास और पहले अन्तरराष्ट्रीय मज़दूर संगठन के बारे में जाना। पिछले अंकों में हमने जाना कि कम्यून की स्थापना कैसे हुई और उसकी रक्षा के लिए मेहनतकश जनता किस प्रकार बहादुरी के साथ लड़ी। हमने यह भी देखा कि कम्यून ने सच्चे जनवाद के उसूलों को इतिहास में पहली बार अमल में कैसे लागू किया और यह दिखाया कि "जनता की सत्ता" वास्तव में क्या होती है। – सम्पादक

पेरिस कम्यून – सर्वहारा अधिनायकत्व का पहला प्रयोग

कम्यून के पास वक़्त की कमी थी। उसे आगे-पीछे नज़र दौड़ाने, अपने कार्यक्रम को पूरा करने की तैयारी की मोहलत नहीं मिली। वह काम में जुट भी नहीं पाया था कि वर्साई में जमी और पूरे बुर्जुआ वर्ग द्वारा समर्थित सरकार ने पेरिस के विरुद्ध युद्ध की कार्रवाइयाँ शुरू कर दीं। कम्यून को सबसे पहले आत्मरक्षा के बारे में सोचना पड़ा। अपने अन्तिम दिनों तक, 21-28 मई तक उसे और किसी चीज़ के बारे में संजीदगी से सोचने का मौक़ा ही नहीं मिला। मगर कम्यून के सदस्य मिले हुए समय का पूरा लाभ उठाने के लिए दिनों रात काम में जुटे रहे। नेशनल गार्ड के रक्षकों के पहरे में कम्यून की बैठकें लगातार जारी रहती थीं।

1. **कम्यून मज़दूर वर्ग के इतिहास की महानतम और सर्वाधिक प्रेरक घटनाओं में से एक है। एक ज़बर्दस्त क्रान्तिकारी उभार में पेरिस की मेहनतकश जनता ने पूँजीवादी राज्य को हटाकर उसके स्थान पर जनता की सरकार की अपनी संस्थाएँ क़ायम कीं और 72 दिनों तक राजनीतिक सत्ता अपने हाथों में रखी। पेरिस के मज़दूरों ने बेहद कठिन हालात में, शोषण और उत्पीड़न का ख़ात्मा करने और बिल्कुल नयी बुनियाद पर समाज का नवनिर्माण करने के लिए जी-जान से कोशिश की। उन 72 दिनों की घटनाओं के सबक़ आज भी मज़दूर वर्ग के लिए बहुत अधिक महत्वपूर्ण हैं।**

कम्यून का चुनाव सार्विक पुरुष मताधिकार के सिद्धान्तों के अनुसार हुआ था। वर्साय स्थित प्रतिक्रान्तिकारी सरकार ने जनता से चुनाव का बहिष्कार करने की अपील की थी और बुर्जुआ तथा अभिजात मुहल्लों में डाले मतों की संख्या बहुत कम थी। यह अच्छा ही था, क्योंकि इसका मतलब यह था कि कम्यून मुख्यतः मेहनतकशों द्वारा ही चुना गया था। कम्यून के सदस्यों में राष्ट्रीय गार्ड की केन्द्रीय समिति के वार्ले, दूवाल, जूर्द, एद और वाइयां जैसे सबसे प्रमुख लोग भी थे। राष्ट्रीय गार्ड की केन्द्रीय समिति की ही भाँति कम्यून भी अपने को पेरिस नगर का नगरपालिका निकाय नहीं वरन जनतंत्र की केन्द्रीय क्रान्तिकारी सरकार मानता था।

2. **कम्यून ने सर्वोच्च विधायिका के तौर पर काम करते हुए क़ानून बनाना शुरू कर दिया। साथ ही कम्यून क़ानूनों के लागू होने की निगरानी भी करता था, यानी वह सर्वोच्च कार्यपालिका भी था। विधायिका तथा कार्यपालिका की शक्तियों का एक ही निकाय में यह संयोजन कम्यून के सबसे महत्वपूर्ण लक्षणों में एक था।**

कम्यून ने केन्द्रीय समिति द्वारा शुरू किये गये पुराने बुर्जुआ राज्यतंत्र का ख़ात्मा करने के काम को पूरा किया। नियमित सेना तथा पुलिस को इस समय तक आधिकारिक रूप से भंग किया जा चुका था। तोड़फोड़ के कार्यों में संलग्न पुराने नौकरशाही तंत्र के स्थान पर जनता की कतारों से आये नये कर्मचारियों को नियुक्त कर दिया गया। कम्यून ने आज्ञप्तियाँ जारी करके अफ़सरशाही के बेहद ऊँचे वेतन पाने वाले सदस्यों को बर्ख़ास्त कर दिया और राज्य कर्मचारियों के लिए वेतन की नयी अधिकतम सीमाएँ निर्धारित कर दीं, जिनका लक्ष्य औसत सरकारी कर्मचारी के वेतन को कुशल मज़दूर के वेतन के स्तर पर ले आना था। कम्यून ने यह भी आदेश दिया कि सरकारी कर्मचारी जनता द्वारा चुने जाने चाहिए, उन्हें जनता के आगे उत्तरदायी होना चाहिए और किसी भी समय जनता की माँग पर वापस बुलाया जा सकना चाहिए।

कम्यून की एक बैठक का दृश्य
"चूँकि कम्यून में सिर्फ़ मज़दूर या मज़दूरों के चुने हुए प्रतिनिधि बैठते थे, इसलिए उसके फ़ैसले निश्चित तौर पर सर्वहारा चरित्र के होते थे।"
– मज़दूरों के महान नेता और शिक्षक **फ्रेडरिक एंगेल्स** के शब्द

3. राष्ट्रीय गार्ड की केन्द्रीय समिति तथा कम्यून द्वारा उठाये गये इन सभी कदमों ने एक नये ही प्रकार के राज्य की नींव डाली, जिसकी इतिहास में पहले कोई मिसाल नहीं थी।

लेकिन स्वयं पेरिस के मज़दूरों और उनके नेताओं – कम्यून के सदस्यों – तक को इसका अहसास नहीं था कि वे किस चीज़ का निर्माण कर रहे हैं। लोग और कम्यून में उनके प्रतिनिधि ज़िन्दगी के तकाज़ों के मुताबिक काम करते हुए जनसाधारण की सृजनात्मक शक्ति को ही साकार कर रहे थे। जनता की इस रचनात्मक शक्ति की दिशा और उसके वास्तविक महत्व का पहले-पहल कार्ल मार्क्स ने वर्णन किया था, जिन्होंने यह बताया कि 1871 का पेरिस कम्यून वस्तुतः उस सर्वहारा अधिनायकत्व का एक उदाहरण था, जिसके आगमन की उन्होंने अपनी 1848–1850 की कृतियों में घोषणा की थी।

पहले इण्टरनेशनल के अध्यक्ष, कार्ल मार्क्स

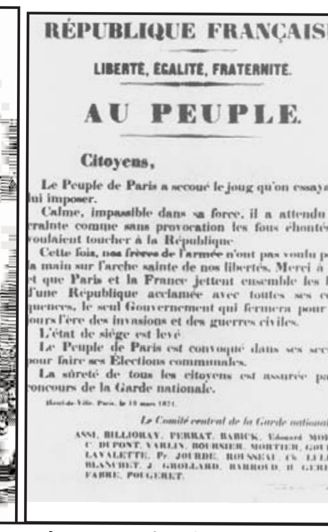

RÉPUBLIQUE FRANÇAISE.

LIBERTÉ, ÉGALITÉ, FRATERNITÉ.

AU PEUPLE.

Citoyens,

Le Peuple de Paris a secoué le joug qu'on essayait de lui imposer.

Calme, impassible dans sa force, il a attendu sans crainte comme sans provocation les fous éhontés qui voulaient toucher à la République.

Cette fois, nos frères de l'armée n'ont pas voulu porter la main sur l'arche sainte de nos libertés. Merci à tous et que Paris et la France jettent ensemble les bases d'une République acclamée avec toutes ses conséquences, le seul Gouvernement qui fermera pour toujours l'ère des invasions et des guerres civiles.

L'état de siége est levé.

Le Peuple de Paris est convoqué dans ses sections pour faire ses Élections communales.

La sûreté de tous les citoyens est assurée par le concours de la Garde nationale.

Hôtel-de-Ville, Paris, le 19 mars 1871.

Le Comité central de la Garde nationale.

ASSI, BILLIORAY, FERRAT, BABICK, Édouard MOREAU, C. DUPONT, VARLIN, BOURSIER, MORTIER, GOUHIER, LAVALETTE, Fr. JOURDE, ROUSSEAU, Ch. LULLIER, BLANCHET, J. GROLLARD, BARROUD, H. GERESME, FABRE, POUGERET.

पेरिस कम्यून की स्थापना के अगले दिन नेशनल गार्ड की केन्द्रीय कमेटी की ओर से जारी पोस्टर। इसमें कहा गया है – "नागरिको, पेरिस की जनता ने अपने ऊपर लदे हुए ग़ुलामी के बोझ को उतार फेंका है।... पेरिस और फ़्रांस मिलकर एक गणराज्य की बुनियाद रखेंगे, और इससे होने वाले सारे परिणामों सहित इसकी घोषणा की जायेगी, यही एकमात्र ऐसी सरकार होगी जो हमेशा के लिए हमलों और गृहयुद्धों के युग का अन्त कर देगी।"

पेरिस में पैंथियन की इमारत पर लहराता कम्यून का लाल झण्डा।

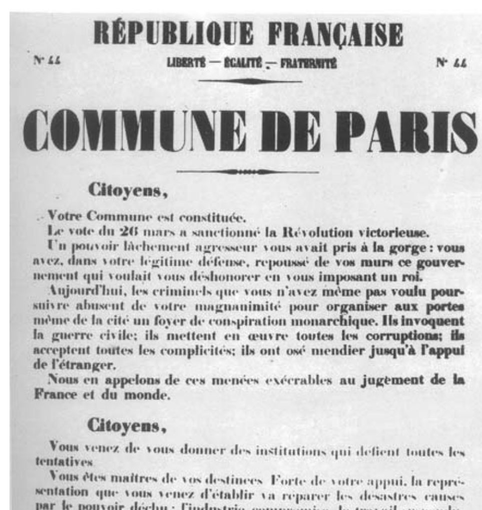

RÉPUBLIQUE FRANÇAISE

N° 44 LIBERTÉ — ÉGALITÉ — FRATERNITÉ N° 44

COMMUNE DE PARIS

Citoyens,

Votre Commune est constituée.

Le vote du 26 mars a sanctionné la Révolution victorieuse.

Un pouvoir lâchement agresseur vous avait pris à la gorge : vous avez, dans votre légitime défense, repoussé de vos murs ce gouvernement qui voulait vous déshonorer en vous imposant un roi.

Aujourd'hui, les criminels que vous n'avez même pas voulu poursuivre abusent de votre magnanimité pour organiser aux portes même de la cité un foyer de conspiration monarchique. Ils invoquent la guerre civile; ils mettent en œuvre toutes les corruptions; ils acceptent toutes les complicités; ils ont osé mendier jusqu'à l'appui de l'étranger.

Nous en appelons de ces menées exécrables au jugement de la France et du monde.

Citoyens,

Vous venez de vous donner des institutions qui défient toutes les tentatives.

Vous êtes maîtres de vos destinées. Forte de votre appui, la représentation que vous venez d'établir va réparer les désastres causés par le pouvoir déchu : l'industrie compromise, le travail suspendu,

29 मार्च को कम्यून ने यह घोषणा जारी की: "अब आप ख़ुद अपनी तक़दीर के मालिक हैं। आपने अभी-अभी जिन प्रतिनिधियों को चुना है, वे आपके समर्थन के बलबूते पर, सत्ता से बेदखल किये गये शासकों द्वारा की गयी तमाम बर्बादियों की भरपायी करेंगे: अस्त-व्यस्त हो गये उद्योग, ठप्प हुए काम, बन्द पड़ी कारोबारी गतिविधियों को तेज़ी से शुरू किया जायेगा।"

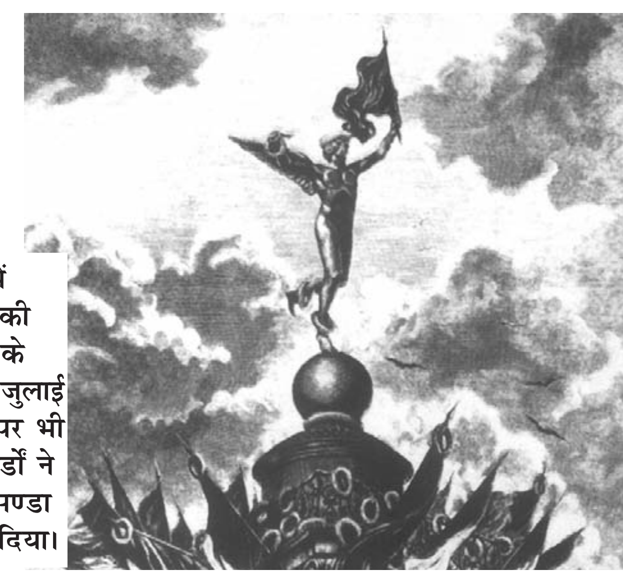

फ़्रांस में 1830 की क्रान्ति के प्रतीक जुलाई स्तम्भ पर भी कम्युनार्डों ने लाल झण्डा फहरा दिया।

"अभूतपूर्व कठिनाइयों से भरी स्थितियों में काम करते हुए कम्यून का टिका रहना ही उसकी सफलता का सबसे बड़ा पैमाना है! पेरिस कम्यून द्वारा फहराया गया लाल झण्डा पेरिस के लिए मज़दूरों की सरकार का निशान है! उन्होंने साफ़ तौर पर, सोच-समझकर ऐलान किया है कि श्रम की मुक्ति और समाज को बदल डालना उनका लक्ष्य है।" – मज़दूर वर्ग के महान नेता और शिक्षक कार्ल मार्क्स के शब्द

4. निस्सन्देह, पेरिस कम्यून में सर्वहारा अधिनायकत्व का अपने पूर्ण रूप में विकसित हो पाना सम्भव नहीं था। कम्यून इस प्रकार के अधिनायकत्व की स्थापना का पहला ही प्रयास था। उसके नेता प्रयोग कर रहे थे और उन्होंने कई गम्भीर गलतियाँ भी कीं। फिर भी कम्यून ने यह दिखाया कि सर्वहारा वर्ग पूँजीवादी राज्यतंत्र को नष्ट करने और उसके स्थान पर राज्यतंत्र के उच्चतर स्वरूप की स्थापना करने में, और इस प्रकार लोकतंत्र के उच्चतर स्वरूप – बहुलांश के हितों में, जनता के हितों में – सर्वहारा लोकतंत्र का पथ प्रशस्त करने में समर्थ है और उसे ऐसा करना भी चाहिए।

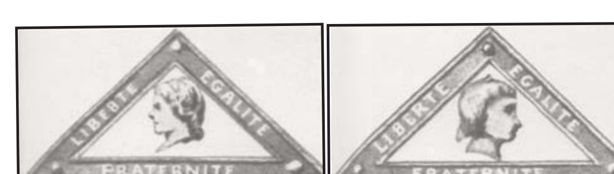

कम्युनार्डों द्वारा अपनी वर्दी पर लगाया जाने वाला बिल्ला। इस पर ये शब्द लिखे हैं – स्वतंत्रता, समानता, भाईचारा।

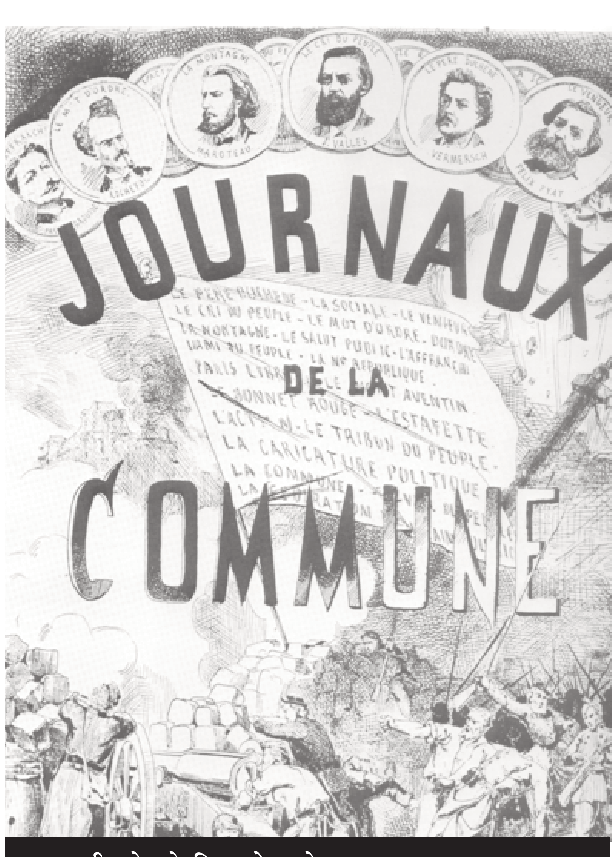

कम्यून की ओर से निकलने वाले एक अख़बार का मुखपृष्ठ

5. मात्र 72 दिन की अपनी छोटी-सी ज़िन्दगी के बावजूद कम्यून ने दिखा दिया कि वह वास्तव में एक लोकतांत्रिक शासन था, जिसके लिए पहला और सबसे बड़ा सवाल मेहनतकश जनसाधारण का कल्याण था। राष्ट्रीय गार्ड की केन्द्रीय समिति ने सत्ता में आने के साथ कई नये महत्वपूर्ण क़ानून बनाये थे। क्रान्ति की सफलता के अगले ही दिन, 19 मार्च को उन सभी राजनीतिक बन्दियों की सज़ा माफ़ी की घोषणा कर दी गयी, जिन्हें शोषक वर्गों की सरकार ने गिरफ़्तार किया या सज़ा दी थी। गिरवी चीज़ों की बिक्री पर पाबन्दी लगाने और 15 फ्रांक से कम मूल्य की गिरवी रखी वस्तुएँ उनके स्वामियों को लौटाने का आदेश तुरन्त जारी कर दिया गया। इसी प्रकार किराया न दे सकने पर किरायेदारों का मकानों से निकाला जाने पर भी रोक लगा दी गयी। इन सभी क़ानूनों का मकसद ग़रीबों और मेहनतकशों के हितों की रक्षा करना था। राष्ट्रीय गार्ड के सैनिकों को नियमित वेतन दिये जाने और ग़रीबों के लिए अनुदानस्वरूप बाँटे जाने के लिए दस लाख फ्रांक जारी करने की आज्ञप्तियों का भी यही उद्देश्य था। कम्यून ने 16 अप्रैल को एक आज्ञप्ति जारी करके उन सभी उद्यमों को मज़दूरों और उत्पादकों के संघों को हस्तान्तरित कर दिया जिनके मालिक उन्हें छोड़कर भाग गये थे। यह आज्ञप्ति वास्तविक समाजवादी स्वरूप की थी और अगर कम्यून कुछ ज़्यादा चला होता, तो निस्सन्देह उसका समाजवादी चरित्र और भी अधिक स्पष्टता के साथ सामने आया होता।

इसी प्रकार कम्यून ने पेरिस से भागे हुए बुर्जुआ मालिकों के सभी फ़्लैटों को ज़ब्त करने और उन्हें नगर के रक्षकों को और सबसे पहले उन लोगों को, जिनके आवास लड़ाई के दौरान क्षतिग्रस्त हो गये थे, बाँटने की व्यवस्था की। चर्च को राजकाज से अलग कर दिया गया। जनसाधारण के बीच शिक्षा के प्रसार के लिए महत्वपूर्ण कदम उठाये गये – लूव्र, त्युइल्येरी तथा अमूल्य कला निधियों से युक्त अन्य संग्रहालयों और महलों को सर्वसाधारण के लिए खोल दिया गया और कला की सभी विधाओं तथा सभी के लिए स्कूली शिक्षा को हर तरह से बढ़ावा दिया गया।

कम्यून की ओर से चलाये जाने वाले एक सामूहिक भोजनालय के बाहर लोगों का समूह। कम्यून के लिए दिनों-रात काम करने वाले लोगों और ग़रीब मेहनतकशों की मदद के लिए ऐसे अनगिनत भोजनालय, चिकित्सालय और बच्चों की देखभाल के केन्द्र चलाये जा रहे थे। इनकी ज़िम्मेदारी उठाने में सबसे बड़ी भूमिका औरतों की थी।

6. इन सभी उपायों से कम्यून ने अच्छी तरह से साबित कर दिया कि मेहनतकश वर्ग की सरकार जनता के कल्याण के लिए कितना ज़बर्दस्त काम कर सकती है। लेकिन कम्यून की उपलब्धियों को अमर बना देने वाले इन क़दमों के साथ-साथ कई ग़लतियाँ भी की गयीं, जो प्रतिक्रान्तिकारी पूँजीपति के विरुद्ध संघर्ष के लिए घातक सिद्ध हुईं।

इनमें से सबसे बड़ी ग़लतियाँ वही थीं, जो 18 मार्च की शानदार विजय के लगभग तुरन्त बाद की गयी थीं। पहली बात तो यही थी कि कम्यूनार्डों ने उन सैन्य दलों को नगर से बेरोकटोक चले जाने दिया, जो थियेर के प्रति वफ़ादार थे। इससे भी बड़ी ग़लती यह थी कि पेरिस के लोग अपनी विजय को उसकी तर्कसंगत परिणति पर नहीं ले गये, यानी तुरन्त बढ़कर वर्साई जाने, थियेर की हतोत्साह सेना पर संहारक प्रहार करने और देशभर में क्रान्ति की विजय सुनिश्चित करने के लिए लड़ते रहने के बजाय राष्ट्रीय गार्ड की केन्द्रीय समिति निष्क्रिय बैठकर यह देखने लगी कि पाँसा किस तरफ पलटेगा। इस घातक विलम्ब ने वर्साई स्थित सरकार के लिए अपनी आरम्भिक पराजय से सँभलना, क्रान्ति को पेरिस तक ही सीमित कर देना और शहर पर जवाबी हमले की तैयारी करना सम्भव बना दिया।

7. 18 मार्च के फौरन बाद कई और नगरों, – लियों, मार्सेई, साँ-एत्येन, तुलूज़, पपीन्याँ, क्रेज़ो, आदि – में भी कम्यूनों की स्थापना हो गयी। यह इस बात का प्रमाण था कि पेरिस में जो जन विद्रोह फूटा था, वह फैलकर सारे देश को भी अपने घेरे में ले सकता था। लेकिन कम्यून के नेता आक्रामक कार्रवाइयों की नितान्त आवश्यकता को समझ नहीं सके। इसने पूँजीपति वर्ग के लिए देश के विभिन्न भागों में क्रान्ति के अलग-अलग केन्द्रों को कुचल देना सम्भव बना दिया। अप्रैल के आरम्भ तक प्रान्तों में इन सभी विद्रोहों को कुचला जा चुका था और बुर्जुआ प्रतिक्रान्तिकारी शक्तियों के लिए अपने सभी प्रयासों को पेरिस के विरुद्ध संकेन्द्रित कर देना सम्भव हो गया था।

इस समय तक पेरिस देश के अन्य भागों से कट चुका था। इन हालात में राजधानी के मज़दूर देहातों के किसान समुदाय के साथ आवश्यक गँठजोड़ क़ायम नहीं कर पाया। कम्यून के नेताओं को इस कार्यभार का अहसास था और क्रान्तिकारी सरकार ने किसानों को सम्बोधित बहुत-सी अपीलें भी जारी कीं। लेकिन कम्यूनार्ड किसान समुदाय के साथ मोर्चा बना पाने और उनके समर्थन का उपयोग कर सकने की स्थिति में किसी भी प्रकार नहीं थे।

कम्यून ने खेत मज़दूरों और किसानों से पेरिस कम्यून का साथ देने की अपील की। देहात में बड़ी संख्या में पर्चे बाँटे गये जिनमें यह सरल मगर शक्तिशाली सन्देश था: "हमारे हित एक ही हैं।" मज़दूरों ने उस वक़्त विज्ञान की नयी खोज, गर्म हवा के गुब्बारे का भी लाभ उठाया और देहातों में उससे पर्चे गिराये जिनमें कहा गया था: "गाँवों में रहने वाले लोगो, आप आसानी से देख सकते हैं कि जिन उद्देश्यों के लिए पेरिस लड़ रहा है, वे आपके भी हैं; यानी मज़दूर की मदद करके आप अपनी भी मदद कर रहे हैं। जो जनरल इस समय पेरिस पर हमला कर रहे हैं वे वही हैं जिन्होंने फ्रांस की रक्षा के साथ ग़द्दारी की थी।...अगर पेरिस की हार होती है, तो आपकी गर्दन पर रखा ग़ुलामी का जुवा आपके बच्चों की गर्दन पर भी बना रहेगा। इसलिए पेरिस को जीतने में मदद करें। हर हाल में इन लक्ष्यों को याद रखें क्योंकि जब तक ये पूरे नहीं होंगे तब तक दुनिया में क्रान्तियाँ होती रहेंगी: ज़मीन जोतने वाले को, उत्पादन के साधन मज़दूर को, हर हाथ को काम।

इस चित्र में कम्यून को एक स्त्री के रूप में दिखाया गया है जो एक हाथ से "अज्ञान" को और दूसरे हाथ से "प्रतिक्रियावाद" नाम के दो बौने शैतानों को दबोचे हुए है।

कम्यून ने दकियानूसी और राजकाज में धर्म की दखल पर कैसी चोट की थी इसकी झलक नीचे दिये गये एक नोटिस को पढ़कर मिल जाती है। पेरिस में मोन्तमार्त्र के चर्च के बन्द दरवाज़ों पर चिपकाये गये इस नोटिस में लिखा था: "चूँकि पादरी डाकू होते हैं और चर्च उनके अड्डे जहाँ वे जनता की नैतिक हत्याएँ किया करते हैं, और फ्रांस को बदनाम बोनापार्त, फाव्र और त्रोचू (शासक और मंत्री) के आगे घुटने टेकने को मजबूर करते हैं; इसलिए पुराने पुलिस ज़िले के पत्थर काटने वाले कारीगरों के प्रतिनिधि यह आदेश देते हैं कि सेंट-पियेर का गिरजाघर बन्द कर दिया जाये, और इसके पादरियों तथा उनके मूढ़मति चेलों को गिरफ़्तार कर लिया जाये।"

पेरिस कम्यून के साथ एकजुटता प्रदर्शित करते हुए ब्रिटेन, जर्मनी और यूरोप के कई अन्य देशों में आन्दोलन उठ खड़े हुए। मार्क्स के प्रस्ताव पर इंटरनेशनल की जनरल काउंसिल ने पेरिस की घटनाओं के बारे में मज़दूरों को बताने के लिए अपने सदस्य जगह-जगह भेजने का प्रस्ताव पारित किया।

लन्दन में पेरिस कम्यून के समर्थन में एक प्रदर्शन का चित्र।

8. कम्यून की अगुवाई में समाज की जो सामाजिक और राजनीतिक शक्ल धीरे-धीरे उभर रही थी वह निस्सन्देह समाजवादी थी। लेकिन ऐसे किसी समाज की पहले से कोई नज़ीर नहीं थी, उनके पास कोई स्पष्ट और तैयार कार्यक्रम भी नहीं था, वे चारों ओर से ख़ून के प्यासे दुश्मनों से घिरे हुए थे और घेरेबन्दी तथा युद्ध ने भारी सामाजिक तथा आर्थिक अव्यवस्था पैदा कर दी थी। ऐसे में मज़दूरों को अपने हितों के अनुरूप समाज को संगठित करने की ठोस ज़रूरतों के मुताबिक तुरन्त-तुरन्त नये-नये निर्णय लेने पड़ते थे। उन्होंने बहुत-सी ग़लतियाँ कीं, लेकिन फिर भी, मज़दूरों द्वारा उठाये गये सभी महत्वपूर्ण क़दमों की दिशा उजरती मज़दूरों के वर्ग की सम्पूर्ण सामाजिक और आर्थिक मुक्ति की ओर संकेत करती थी। मगर कम्यून की त्रासदी यह थी कि उसे वक़्त बिल्कुल नहीं मिला। समाजवाद की दिशा में बढ़ने की किसी भी सम्भावना को थियेर की सेनाओं की वापसी और उसके बाद हुए भयानक ख़ूनख़राबे ने ख़त्म कर दिया।

...अगले अंक में जारी

अपनी तार्किक परिणतियों तक पहुँच गये अण्णा मण्डली और रामदेव के आन्दोलन

जब तक आमूल बदलाव का कोई क्रान्तिकारी विकल्प नहीं होगा तब तक ऐसे प्रहसन चलते ही रहेंगे

हाल के दिनों में भ्रष्टाचार मिटाने का नारा उछालने वाले दोनों आन्दोलनों के अलग–अलग तरह के जमावड़े पिछले दिनों दिल्ली में आगे–पीछे लगभग एक साथ ही हुए और दोनों ही इसी बीच अपनी–अपनी तार्किक परिणतियों तक पहुँच गये। बाबा रामदेव की "महाक्रान्ति" की घोषणा तो रामलीला मैदान से चलकर अम्बेडकर स्टेडियम में सिमट गयी। अब शायद वे इस "महा" क्रान्ति के फुस्स होने के बाद डीलक्स क्रान्ति, सुपरडीलक्स क्रान्ति या फिर श्रीश्री108क्रान्ति का नारा देंगे। एन.जी.ओ. के मठाधीशों आदि को लेकर भ्रष्टाचार विरोध की दूसरी मुहिम चला रही अण्णा हज़ारे–अरविन्द केजरीवाल मण्डली की तथाकथित "दूसरी आज़ादी की लड़ाई" भी बीच में ही बिला गयी। वैसे शायद वे भूल गये थे कि "दूसरी आज़ादी" की लड़ाई एक बार पहले भी 1974 के जेपी आन्दोलन के समय यह देश देख चुका है जिसके नतीजे के तौर पर कांग्रेस की जगह जनता पार्टी की सरकार बनी थी जो जल्दी ही नेताओं की आपसी सिरफुटौवल के चलते बिखर गयी। यह मण्डली तो अब टूट भी चुकी है। अण्णा रूठकर वापस रालेगण सिद्धी में अपने गाँव सिधार गये हैं और केजरीवाल एण्ड कम्पनी (अब तक बिना नाम की) पार्टी बनाकर संसदीय सुअरबाड़े में घुसने की कवायदों में जुट गये हैं।

पूँजीवादी लूट–खसोट, अत्याचार और उसके साथ–साथ पलने वाले भ्रष्टाचार से तंग आम जनता के सामने जब तक वास्तविक बदलाव का कोई ठोस विकल्प नहीं होगा तब तक ऐसी जोकरी चलती रहेगी। हर कुछ वर्ष के अन्तराल पर कोई मदारी जनता को उसके कष्टों से मुक्ति दिलाने के लिए कोई नया नुस्खा दिखाता हुआ थोड़े समय के लिए मंच पर तमाशा दिखाकर ग़ायब हो जायेगा और जनता को पहले से भी अधिक भ्रमित और निराश कर जायेगा।

भ्रष्टाचार मिटाने के रामबाण नुस्खे के तौर ये लोग जिस जन लोकपाल की माँग कर रहे हैं उसके बारे में सुप्रीम कोर्ट के रिटायर्ड जज मारकण्डेय काटजू का कहना है कि देश के सभी विभागों को लोकपाल के दायरे में लाने के लिये कम से कम एक लाख लोगों का स्टाफ़ चाहिए। ज़ाहिर है, ईमानदारी का सर्टिफिकेट पाये हुए एक लाख लोगों की भरती अपनेआप में एक भारी कठिन काम होगा, और फिर इस भारी–भरकम नौकरशाही को भ्रष्ट होने से रोकने के लिए एक और 'सुपर जन लोकपाल' टाइप संस्था की दरकार होगी। जन लोकपाल को सरकारी नियंत्रण से मुक्त स्वायत्त संस्था बना देने से उसकी पवित्रता की गारण्टी नहीं हो जायेगी। यदि स्वायत्तता की ही बात होती तो देश की न्यायपालिका तो स्वायत्त ही है, मगर न्यायपालिका में नीचे से लेकर ऊपर तक व्याप्त भ्रष्टाचार से कौन परिचित नहीं होगा। अण्णा के आन्दोलन से ही जुड़े पूर्व कानून मन्त्री शान्तिभूषण का कहना है कि उच्चतम न्यायालय के 16 में से कम से कम 8 मुख्य न्यायाधीश भ्रष्ट थे (एन.डी.टी.वी, 16 सितम्बर, 2010)। ऐसे में यह कैसे सम्भव होगा कि पूँजीवादी आर्थिक सम्बन्धों के बीच रहकर यह संस्था और इसमें चुने गये लोग भ्रष्ट नहीं होंगे। इस तरह की माँगे मुंगेरीलाल के हसीन सपने देखने वाले कुछ लोगों को कुछ समय के लिये प्रभावित कर सकती हैं, लेकिन उससे अधिक इससे ठोस रूप में और कुछ भी हासिल नहीं हो सकता।

पूँजीवादी समाज जिस बुनियाद पर खड़ा है वह अपने आप में भ्रष्टाचार है – यानी अतिरिक्त मूल्य के रूप में मज़दूरों की मेहनत की लूट जिसे इस समाज में क़ानूनी माना जाता है। ज़्यादा से ज़्यादा मुनाफ़ा कमाने की होड़ में सारे पूँजीपति बने–बनाये नियमों–क़ानूनों को भी तोड़ने, मज़दूरों को न्यूनतम क़ानूनी अधिकारों से भी वंचित करने, टैक्स चोरी करने और नेताओं–अफ़सरों को ख़रीदने में लग जाते हैं। ज़ाहिर है, फिर लुटेरों के सेवक भी सदाचारी नहीं हो सकते। पूँजीवाद इसके बिना चल ही नहीं सकता है और कोई भी पूँजीवादी देश इसका अपवाद नहीं है। लूट पर टिके उत्पादन सम्बन्धों की सेवा करने के लिए बनायी जाने वाली कोई भी संस्था चाहे वह स्वायत्त हो या न हो उसे भ्रष्टाचार से नहीं बचाया जा सकता।

केजरीवाल एण्ड कम्पनी की दूसरी माँग है कि ग्राम पंचायतों को ज़्यादा अधिकार दिया जाये और ग्राम स्वराज्य को साकार बनाया जाये जो उनके मुताबिक भ्रष्टाचार ख़त्म करने का एक और अचूक नुस्खा है। अपनी किताब 'स्वराज्य' में केजरीवाल ने लिखा है कि पंचायतों में कलक्टर के माध्यम से सरकारों का बहुत हस्तक्षेप होता है इसीलिए वे ईमानदारी से काम नहीं कर पातीं।

केजरीवाल या तो बहुत भोले हैं या बहुत शातिर जो वे कहते हैं कि ग्राम पंचायतों को ज़्यादा अधिकार देने से जनता के हाथों में सत्ता आ जायेगी। हर कोई जानता है कि पंचायतों पर धनी किसानों, गाँव के धनाढ्यों, दबंगों का कब्ज़ा है। पंचायती राज का ढाँचा लागू ही किया गया है ग्रामीण क्षेत्र के शासक वर्गों को सत्ता में भागीदार बनाने के लिए। गाँव में प्रधान वही चुना जाता है जो पैसे और डण्डे के दम पर वोट खरीद सकता है। ज़्यादातर छोटे किसानों और मज़दूरों की उसमें कोई भागीदारी नहीं होती। हर पंचायती क्षेत्र में ज़्यादातर धनी किसानों–कुलकों– दबंगों के परिवार के सदस्य या उनका कोई लग्गू–भग्गू ही चुनाव जीतता है। जब तक आर्थिक ढाँचे में कोई बदलाव न हो, तब तक कैसी भी चुनाव प्रणाली हो, आर्थिक रूप से ताक़तवर लोग ही चुनकर ऊपर जायेंगे। ऐसे में, पंचायतों को और अधिक अधिकार देने से केवल इतना ही होगा कि गाँवों में अमीरों और दबंगों के हाथ में और अधिक ताक़त आ जायेगी, और खुशहाल किसानों की खुशहाली थोड़ी और बढ़ जायेगी। गाँव के बहुसंख्यक ग़रीबों को इससे कुछ हासिल नहीं होने वाला है।

इन लोगों की तीसरी माँग है कि जनता के पास किसी भी जन–प्रतिनिधि को चुनने और उसे वापस बुलाने का अधिकार होना चाहिए। इस आर्थिक व्यवस्था के भीतर प्रतिनिधि चुनने की चाहे कोई भी प्रक्रिया अपनायी जाये फिर भी आर्थिक रूप से विशेषाधिकार प्राप्त लोग ही चुनकर ऊपर पहुँचते हैं। इसका अनुमान वर्तमान संसद से ही लगाया जा सकता है जहाँ चुने गये 543 संसद सदस्यों में से 315 यानी लगभग 60 प्रतिशत करोड़पति हैं, जो उद्योगपति, बिल्डर, व्यापारी या शेयर–ब्रोकर जैसी पृष्ठभूमि के हैं। बुनियादी आर्थिक ढाँचे में बदलाव किये बिना चुनाव प्रणाली में कोई भी सुधार वास्तव में बेमतलब ही होगा।

टीम अण्णा की एक और माँग यह थी कि सरकार से 15 भ्रष्ट मन्त्रियों को हटाया जाना चाहिए। उनसे किसी ने यह नहीं पूछा कि ऐसा कैसे सम्भव है कि जो दूसरे "सदाचारी" लोग मन्त्री बनाये जायेंगे वे भ्रष्ट नहीं होंगे। इस तरह की माँगों से अण्णा टीम लोगों के सामने यह सिद्ध करने की कोशिश करती है कि वर्तमान पूँजीवादी व्यवस्था अपने आप में ग़लत नहीं है, सिर्फ़ कुछ "गन्दे" लोगों को हटाकर साफ़–सुथरे लोगों को सत्ता में लाने की आवश्यकता है जो पूरी ईमानदारी से अपना काम करें। अण्णा ऐसे मौकों पर नैतिकता और सदाचार की नसीहत देकर भ्रष्टाचार को समाप्त करने की बात करने लगते हैं। लेकिन यहाँ भी वह पूरी आर्थिक व्यवस्था पर कोई टिप्पणी नहीं करते। पूँजीवाद में काला धन सफ़ेद धन से ही पैदा होता है। पूँजीवादी सरकार वास्तव में पूँजीपतियों की मैनेजिंग कमेटी होती है जो पूँजी को मैनेज करती है जिससे मज़दूरों का अतिरिक्त श्रम निचोड़कर मुनाफ़ा पैदा करने की प्रक्रिया सुचारू रूप से चलती रहे। पूँजीवादी आर्थिक सम्बन्धों में यदि क़ानून के हिसाब से बिल्कुल भ्रष्टाचार ना हो (हालाँकि भ्रष्टाचार–मुक्त पूँजीवाद एक मिथक है), तब भी मुनाफ़े के लिए मज़दूरों को निचोड़ना अपनेआप में एक लूट है। सभी क़ानूनी दायरों के भीतर रहते हुए भी करोड़ों मेहनतकश लोग अपने अधिकारों से बेदखल कर दिये जाते हैं। वास्तव में पूँजीवादी व्यवस्था अपने आप में एक भ्रष्टाचार है, पूरी दुनिया में दो नम्बर के कामों और टैक्स चोरी के बिना किसी भी पूँजीवादी व्यवस्था का अस्तित्व हो ही नहीं सकता।

अब काले धन और सफ़ेद धन की बात करते हैं, जिसके बारे में भ्रष्टाचार के विरुद्ध लड़ने वाले ये महारथी काफ़ी तीखे तेवर दिखाते हैं। वास्तव में काले धन और सफ़ेद धन का आपस में उलटफेर होता ही रहता है। काला धन कभी सफ़ेद हो जाता है और सफ़ेद धन किन्हीं स्थितियों में काला धन माना जा सकता है। हवाला, वायदा कारोबार, लॉबीईंग और तस्करी के साथ फिल्म और मनोरंजन उद्योग में लगने वाला धन, खेल उद्योग में लगा धन और सट्टेबाज़ी, हथियारों की ख़रीद– फ़रोख्त में दिया जाने वाला कमीशन जैसे अनेक उदाहरण हैं जो पूरी दुनिया के स्तर पर देखें तो कहीं क़ानूनी दायरे के अन्दर माने जाते हैं, तो कहीं ग़ैर–कानूनी माने जाते हैं। उदारीकरण और भूमण्डलीकरण के वर्तमान दौर में पूरी दुनिया के देशों के बीच में पूँजी का निर्बाध आदान–प्रदान होता है। इस पूँजी का कोई प्रमाण नहीं होता कि वह काली है या सफ़ेद। आज भारत में एफ.डी.आई. में जो पैसा लग रहा है उसका कोई प्रमाण किसी के पास नहीं है कि उसका स्रोत क्या है। ऐसा ही नशीली दवाओं के खरबों डॉलर के कारोबार में भी है, जो कहीं पर ग़ैरकानूनी रूप से तस्करी के माध्यम से बेची जाती हैं और कहीं इनकी बिक्री वैधानिक रूप से होती है। इन सभी कारणों से काले धन और सफ़ेद धन के बीच आज कोई विभाजक रेखा नहीं खींची जा सकती है। काले धन का अनुत्पादक पूँजी से भी गहरा रिश्ता है।

पूँजीवाद अपनी आन्तरिक गति से लगातार भ्रष्टाचार पैदा कर रहता है और फिर जब वह सारी सीमाओं को तोड़ने लगता है और व्यवस्था के लिए मुश्किल पैदा करने लगता है तो समय–समय पर उसे नियन्त्रित करने के प्रयास भी इसी व्यवस्था के भीतर से होते हैं। ऐसे में कभी–कभी कोई मसीहा, कोई श्रीमान सुथरा जी (मिस्टर क्लीन) डिर्जेण्ट और पोंछा लेकर पूँजीवाद पर लगे खून और कालिख़ के धब्बों को साफ़ करने में जुट जाते हैं। साम्राज्यवादी पूँजी से संचालित एन.जी.ओ. "सभ्य समाज" (सिविल सोसायटी) के साथ मिलकर पूँजीवाद की एक सुरक्षा पंक्ति का काम करते हैं। लेकिन वर्तमान में वैश्विक स्तर पर पूँजीवादी व्यवस्था मन्दी की चपेट में है, और आसमान छूती महँगाई और बेरोज़गारी आदि के कारण जन–आन्दोलनों का दबाव लगातार बना हुआ है। ऐसे में इस दबाव को कम करने के लिये सेफ्टी वाल्व का काम करने वाले एन.जी.ओ. अभी व्यवस्था की सुरक्षा पंक्ति की भूमिका नहीं निभा पा रहे हैं। ऐसे में ये आन्दोलन वास्तविक मुद्दों से ध्यान भटकाने की भूमिका बख़ूबी निभा रहे हैं।

आज की परिस्थितियों में भारत की वामपन्थी सुधारवादी राजनीतिक पार्टियों के प्रति जनता में बढ़ रहे अविश्वास के कारण वे पूँजीवाद की दूसरी सुरक्षा पंक्ति का काम करने में ज़्यादा सफल नहीं हो पा रही हैं। इसलिए "सभ्य समाज" के इस तरह के आन्दोलनों के कन्धों पर यह कार्यभार आ पड़ा है कि वे देश की जनता में व्याप्त असन्तोष को कम करने के लिए आगे आयें। ऐसे में इस पंचमेल खिचड़ी द्वारा भ्रष्टाचार विरोध में खड़ा किया गया यह आन्दोलन पूँजीवादी व्यवस्था के लिए दूसरी सुरक्षा पंक्ति का कार्यभार बख़ूबी निभा रहा है।

इस आन्दोलन का जो अन्त हुआ उससे अलग हो ही नहीं सकता था। इसकी सम्भावनाएँ अब समाप्त हो रही थीं और बुर्जुआ संसदीय राजनीति की बन्द गली में इसे मुड़ना ही था। आने वाला वक़्त बतायेगा कि मुख्यधारा की राजनीति में एक बटखरे से ज़्यादा इनकी कोई भूमिका बन भी पायेगी या नहीं।

इस आन्दोलन से वर्तमान सत्ता के पक्ष में एक सहायता तो यह हुई कि लोगों में यह भ्रम फैला कि देश की मुख्य समस्या भ्रष्टाचार ही है। दूसरी ओर अण्णा आन्दोलन की असफलता भी सत्ता के लिए एक सफलता है, जो लोगों के बीच पस्ती पैदा करने का काम करेगी और लोगों के बीच एक सामान्य निराशावादी धारणा को बल मिलेगा कि किसी भी आन्दोलनों से कुछ हासिल नहीं हो सकता क्योंकि अन्त में ये सभी आन्दोलन बुर्जुआ संसदीय राजनीति के दायरे में जाकर समाप्त हो जाते हैं।

अण्णा टीम के बाद अब रामदेव की रामलीला की बात करते हैं। अपने टीवी चैनल पर लगातार प्रचार करने के बाद रामदेव ने विदेशी बैंकों में जमा भारत के 400 लाख करोड़ रुपये को देश में वापस लाने के नारे के साथ अपना आन्दोलन शुरू किया था। पिछले 9 अगस्त 2012 को अनेक लोकरंजक नारों के साथ रामलीला मैदान में रामदेव ने गरमागरम बातों और दावों के साथ आन्दोलन शुरू किया जो 15 अगस्त को एक प्रहसन के रूप में समाप्त हो गया और अन्धी देशभक्ति और धर्मान्धता से लैस रामदेव के समर्थक वापस अपने–अपने घरों को लौट गये। रामदेव देश के बाहर बैंकों में मौजूद काले धन को वापस लाने की बात करते हैं, लेकिन देश के भीतर जो काला धन मौजूद है उसके बारे में कुछ नहीं बोलते। पूरे देश में मठों और मन्दिरों में, पूँजीपतियों और व्यापारियों के गोदामों में, नेताओं और नेताओं के चमचों के पास, सरकारी अफसरशाहों, इंजीनियरों, यहाँ तक कि चपरासियों और बिजली के मीटर रीडरों तक के घरों में करोड़ों की सम्पत्ति मिलती है। यह सारा काला धन जो देश के अन्दर मौजूद है उसकी मात्रा देश के बाहर मौजूद काले धन के भी कहीं ज़्यादा है। रामदेव इस धन को बाहर निकलवाने की बात कभी नहीं करते। ख़ुद उनका 1100 करोड़ रुपये का व्यापारिक साम्राज्य काले धन की बुनियाद पर खड़ा है, इसके गम्भीर आरोप उन पर लगते रहे हैं। उत्तराखण्ड में किसानों की सैकड़ों एकड़ ज़मीन पर अवैध कब्ज़ा, मध्यप्रदेश में करोड़ों की अचल सम्पत्ति, स्कॉटलैण्ड में एक पूरा टापू ख़रीदना और स्वदेशी की बात करते–करते विदेशी कम्पनी ही ख़रीद लेना बाबा की कुछ ख़ास लीलाओ में शामिल हैं। कांग्रेस सरकार बदले के लिए भी उनके ख़िलाफ़ जाँच की कार्रवाई कर रही हो तो भी इतने थोड़े समय में इतना बड़ा साम्राज्य खड़ा कर लेना सवाल तो खड़े करता ही है। धर्म और पूँजी का इतना अच्छा मिश्रण कम ही देखने को मिलता है।

धार्मिक कट्टरपन्थ की राजनीतिक करने वाले संघ और

(पेज 12 पर जारी)

गुड़गाँव के आटोमोबाइल मज़दूरों की स्थिति की एक झलक

गुड़गाँव-मानेसर की सैकड़ों छोटी-बड़ी आटोमोबाइल कम्पनियों में गाड़ियों में इस्तेमाल होने वाले कई प्रकार के पार्ट बनते हैं और सभी में 90 से लेकर 100 प्रतिशत मज़दूर ठेके पर काम करते हैं। ये कम्पनियाँ यहाँ स्थित मारुति सुज़ुकी, होण्डा, हीरो जैसी कम्पनियों को सप्लाई करने के अलावा देश के दूसरे हिस्सों में और विदेशों में मोटरसाइकल, कार, ट्रक आदि के पार्ट-पुर्जे निर्यात करती हैं।

इनमें से कुछ हैं: एस.के.एच. कृष्णा लिमिटेड (गाड़ियों की टंकियाँ) मशीनो प्लास्टिक लिमिटेड (बम्पर और प्लास्टिक के पार्ट), कपारो लिमिटेड (खिड़की-दरवाज़े), ल्युमेक्स लिमिटेड (बल्ब), मुंजाल लिमिटेड (शॉकर) मदरसन लिमिटेड (प्लास्टिक के बम्पर और तार), कृष्णा मारुति लिमिटेड (प्लास्टिक पार्ट, बल्ब, सीटें आदि) पहली छह कम्पनियों के गुड़गाँव में एक या दो प्लाण्ट हैं और कृष्णा मारुति लिमिटेड के गुड़गाँव और मानेसर में कुल 28 प्लाण्ट हैं।

इन सभी में ठेका मज़दूरों की स्थिति लगभग एक समान है। जाँच-पड़ताल और मज़दूरों से बातचीत करने पर यह जानकारी मिली। सभी में 8-8 घण्टे की तीन पालियों में 24 घण्टे काम होता है। ठेका मज़दूरों के लिए 8 घण्टे काम के बदले महीने में 4850 रुपये का वेतन निर्धारित है, जिसमें 12 प्रतिशत पीएफ़ और 1.75 प्रतिशत ईएसआई कटने के बाद लगभग 4100 रुपये महीना वेतन मज़दूर को मिलता है। पीएफ़ की कोई रसीद या ईएसआई कार्ड किसी मज़दूर को नहीं दिया जाता। सिर्फ़ काम पर आने के लिए एक गेटपास दे दिया जाता है। ज़्यादातर मज़दूरों का कहना है कि कम्पनी छोड़ने पर पीएफ़ या ईएसआई का कोई पैसा कम्पनी नहीं देती, और मज़दूर कुछ समय तक चक्कर लगाने के बाद थक-हार कर छोड़ देते हैं, क्योंकि उनके पास काम करने का कोई प्रमाण भी नहीं होता। यानी वास्तव में मज़दूरों का कुल वेतन 4100 रुपये ही है। हर जगह ओवरटाइम सिंगल रेट पर दिया जाता है। ऐसे में मज़दूर 12 से 16 घण्टे तक काम करते हैं। 16 घण्टे की डबल शिफ़्ट में काम करने पर मज़दूरों को एक दिन के 180 रुपये अधिक दे दिये जाते हैं। काम पर आने में लेट होने पर आधे दिन का वेतन काट लिया जाता है।

मज़दूरों ने बताया कि सुपवाइज़र या मैनेजर मज़दूरों को हड़काकर काम करवाते हैं, कभी-कभी बहस और मारपीट हो जाती है, मगर मज़दूरों की शिकायत पर कभी भी कोई कार्रवाई नहीं की जाती। ज़्यादातर घटनाओं में मज़दूर का चालान करके उसका गेटपास छीन लिया जाता है और काम से निकाल दिया जाता है। निकाले गये मज़दूर को बकाया वेतन ठेकेदार से लेना होता है, लेकिन वह कभी नहीं मिलता। कई ठेका मज़दूर आई.टी.आई. और डिप्लोमा वाले भी हैं, और छह-सात साल काम करने के बाद ही उन्हें पर्मानेन्ट किया जाता है। इन्हें भी लगभग 6000 वेतन मिलता है। पहले ये कम्पनियाँ बाहर से सुपरवाइज़र भर्ती करती थीं, जिन्हें ज़्यादा वेतन देना पड़ता था लेकिन अब मज़दूरों के बीच से ही कुछ को छाँटकर उनका थोड़ा वेतन बढ़ाकर सुपरवाइज़र बना दिया जाता है।

इनमें से किसी कम्पनी में ठेका मज़दूर की माँगों को लेकर आज तक कभी कोई आन्दोलन नहीं हुआ। यहाँ न तो कोई यूनियन है और न ही कोई यूनियन कभी इन मज़दूरों के बीच जाती है।

कम्पनियों में अक्सर ही दुर्घटनाएँ होती रहती हैं, और कई बार मज़दूरों की मौत भी हो जाती है। लेकिन शायद ही किसी दुर्घटना के बाद मज़दूरों या उनके परिवार को उचित मुआवज़ा मिलता है। ज़्यादातर दुर्घटनाओं की न तो कोई जाँच होती है न ही प्रशासन कोई कार्रवाई करता है, इनकी कोई ख़बर भी बाहर नहीं आती।

मारुति, मानेसर में 18 जुलाई की घटना के दो ही दिन बाद, 21 जुलाई को मारुति के गुड़गाँव प्लाण्ट में ट्रक से गाड़ी के पुर्ज़ों के डिब्बे उतारते समय ट्रक के ब्रेक फेल होने से एक मज़दूर की कुचलकर मौत हो गई। इसके कुछ ही दिन बाद, 28 जुलाई को ट्रक से सामान उतारते समय एक और मज़दूर की ट्रक से कुचलकर मौत हुई। यह दुर्घटना कम्पनी के अन्दर हुई थी लेकिन मैनेजमेण्ट इसे सड़क पर हुई घटना बता रहा था। इन दोनों घटनाओं के बाद मैनेजमेण्ट ने आनन-फ़ानन में लाश को एम्बुलेंस में रखकर मज़दूर के गाँव भिजवा दिया। दुर्घटना करने वाले ट्रक और ड्राइवर को तुरन्त बाहर भेज दिया गया। मृतक मज़दूरों के परिवार को कोई हर्जाना भी नहीं दिया गया। मज़दूरों का कहना है कि सामान्य स्थिति में यदि ट्रक से कोई दुर्घटना होती है और सामान का कुछ नुकसान होता है तो मैनेजमेण्ट ट्रक का चालान करवाता है, लेकिन जब किसी दुर्घटना में मज़दूर मरता है तो ट्रक का चालान नहीं किया जाता। इन दोनों घटनाओं को ख़बर किसी अख़बार या टीवी चौनल पर नहीं आयी, न ही प्रशासन ने कोई जाँच की। ये मज़दूर ठेका पर काम करते थे और उनके पास यह साबित करने के लिए कोई प्रमाण नहीं था कि वे इसी कम्पनी के लिए काम करते थे। इस घटना के समय मानेसर की घटना के कारण कम्पनी में पुलिस बल भी तैनात था।

इसी साल मार्च में मानेसर में मशीनो प्लास्टिक लिमिटेड कम्पनी में छत गिरने से छह ठेका मज़दूरों की मौत हो गयी थी। लेकिन बाहर बताया गया कि सिर्फ़ 2 मज़दूरों की मौत हुई है। इन मृत मज़दूरों के परिवार वालों को भी न तो कोई हर्जाना दिया गया और न ही कोई कार्रवाई या जाँच की गयी।

कपारो लिमिटेड में पिछले साल एक मज़दूर का हाथ कट गया था, कम्पनी ने उसके तात्कालिक इलाज के पैसे देकर उसे काम से निकाल दिया और कोई हर्जाना मज़दूर को नहीं दिया गया।

– बिगुल टीम

मारुति के मज़दूरों के समर्थन में विभिन्न जनसंगठनों का दिल्ली में प्रदर्शन

कारख़ानों को हिटलरी जेलखानों में बदलकर औद्योगिक शान्ति की गारण्टी नहीं की जा सकती है

मारुति सुज़ुकी, मानेसर के सैकड़ों मजदूरों को मैनेजमेंट द्वारा मनमाने ढंग से बर्खास्त किये जाने और मज़दूरों के लगातार जारी उत्पीड़न के विरुद्ध विभिन्न जन संगठनों, यूनियनों तथा सामाजिक कार्यकर्ताओं ने 21 अगस्त को नई दिल्ली में विरोध प्रदर्शन किया और केन्द्रीय श्रम मंत्री को ज्ञापन देकर मज़दूरों की बर्खास्तगी पर रोक लगाने की माँग की। इसी दिन एक महीने की तालाबन्दी के बाद कम्पनी मैनेजमेण्ट ने कारख़ाना दुबारा शुरू करने की घोषणा की थी। सुबह से हो रही बारिश के बावजूद जन्तर मन्तर पर हुए प्रदर्शन में दिल्ली, गाज़ियाबाद, नोएडा और गुड़गाँव से बड़ी संख्या में आये मज़दूरों तथा कार्यकर्ताओं ने भाग लिया।

प्रदर्शन में वक्ताओं ने मारुति सुज़ुकी मैनेजमेंट के इस तानाशाही फ़ैसले की कठोर शब्दों में भर्त्सना करते हुए कहा कि बिना किसी जाँच के सैकड़ों मज़दूरों और उनके परिवारों को सड़क पर धकेलने की कार्रवाई को हरियाणा और केन्द्र की सरकारों के समर्थन ने उनका मज़दूर-विरोधी चेहरा उजागर कर दिया है। वक्ताओं ने कारख़ाने के भीतर और बाहर रैपिड ऐक्शन फोर्स के 600-700 जवानों की तैनाती और कम्पनी की ओर से हथियारबन्द गार्डों की भरती की निन्दा करते हुए कहा कि कारख़ानों को हिटलरी जेलखानों में बदलकर शान्ति की गारण्टी नहीं की जा सकती है। मारुति सुज़ुकी की घटना के लिए ज़िम्मेदार वास्तविक कारणों पर पर्दा डालकर दमन और उत्पीड़न के दम पर औद्योगिक शान्ति क़ायम करने के प्रयास और भी व्यापक अशान्ति को जन्म देंगे। सभा में मारुति सुज़ुकी के मज़दूरों के साथ पूरी एकजुटता व्यक्त करते हुए पूरे राजधानी क्षेत्र के मज़दूरों व कर्मचारियों से उनके समर्थन में आगे आने का आह्वान किया गया।

सभा के बाद केन्द्रीय श्रम मंत्री को दिये गये ज्ञापन में सैकड़ों मज़दूरों की बर्ख़ास्तगी को रद्द करने, 18 जुलाई की घटना की उच्च स्तरीय निष्पक्ष जाँच कराने, जाँच की रिपोर्ट आने तक किसी भी मज़दूर को काम से न निकालने, मज़दूरों की धरपकड़ को रोकने तथा गिरफ़्तार मजदूरों को रिहा करने, हिंसा भड़काने और गुण्डे बुलाने के लिए ज़िम्मेदार अफ़सरों के ख़िलाफ़ मुक़दमा दायर करने और कारख़ाने के सैन्यीकरण की योजना रद्द करने की माँग की गयी है। इसके साथ ही मारुति सुज़ुकी सहित गुड़गाँव-मानेसर क्षेत्र के तमाम कारख़ानों में श्रम क़ानूनों के गम्भीर उल्लंघन की जाँच के लिए विशेष जाँच समिति गठित करने की माँग की गयी है जिसमें मज़दूर संगठनों के प्रतिनिधियों, श्रम मामलों के विशेषज्ञों और जनवादी अधिकारकर्मियों को भी शामिल किया जाये।

विरोध प्रदर्शन में बिगुल मज़दूर दस्ता, दिल्ली मेट्रो कामगार यूनियन, करावलनगर मजदूर यूनियन, स्त्री मज़दूर संगठन, नौजवान भारत सभा, दिशा छात्र संगठन, जागरूक नागरिक मंच, मारुति सुज़ुकी के मज़दूरों के समर्थन में नागरिक मोर्चा तथा अन्य संगठनों के कार्यकर्ताओं के साथ ही अनेक सामाजिक कार्यकर्ता तथा बुद्धिजीवी शामिल हुए।

– बिगुल संवाददाता

अपनी तार्किक परिणतियों तक पहुँच गये अण्णा मण्डली और रामदेव के आन्दोलन

(पेज 11 से आगे)

भाजपा के पास आज कोई ठोस चुनावी मुद्दे नहीं बचे हैं, राम मन्दिर का मुद्दा आगे नहीं बढ़ पा रहा है, और संघ क्षरण एवं विघटन के दौर से गुजर रहा है। ऐसे में रामदेव का आन्दोलन संघ की धार्मिक कट्टरपन्थ की राजनीति के लिए एक उम्मीद जगा रहा है। वैश्विक स्तर पर पूँजीवाद आर्थिक संकट के दौर से गुजर रहा है और भारत भी इस संकट के प्रभाव से अछूता नहीं रह गया है। ऐसी स्थिति में पीले, बीमार चेहरे वाले मध्यवर्ग के हताश नौजवानों का एक बड़ा हिस्सा अलगाव का शिकार है, जो किसी भी नारे के पीछे बिना सोचे-समझे चल पड़ता है। मध्यवर्ग का यही हिस्सा रामदेव जैसे बहरूपियों के नारों के बहकावे में आकर दक्षिणपन्थी राजनीति की सेवा में जा खड़ा होता है। रामदेव के आन्दोलन के दौरान संसदीय राजनीति के क्षेत्रीय और राष्ट्रीय स्तर पर वोट बैंक की राजनीति करने वाले कई बड़े खिलाड़ी इसके समर्थन में मंच पर आकर जनता के समक्ष अपनी-अपनी बात कह गये। मुलायम सिंह, मायावती, प्रकाश सिंह बादल, चौटाला जैसे जो लोग रामदेव के समर्थन में पहुँचे वे सभी अपने अपने क्षेत्र में भ्रष्टाचार और काले धन के सम्राट हैं। इनके साथ ही संघ और नरेन्द्र मोदी भी इनके गले में अपनी बाँहें डाले हुए दिखे।

काले धन से जुड़ी रामदेव की माँगें किसी प्रहसन के मंच पर एक मसखरे के ऊलजुलूल संवादों से ज़्यादा और कुछ भी नहीं हैं। यह तर्कहीन नारेबाज़ी समाज के कूपमण्डूक, चर्बी चढ़े मध्यवर्ग की कुछ श्रेणियों को तो प्रभावित कर सकती है लेकिन समाज के संजीदा लोगों में इसकी ज़्यादा साख नहीं है। इस प्रकार के सभी लोकरंजक नारे आजकल की निराशा और पस्ती की स्थिति में जनता के एक हिस्से को प्रभावित कर रहे हैं। रामदेव के आन्दोलन के दौरान जिस तरह भगवे झण्डों को फहराया गया, रामदेव और उसके समर्थकों का केसरिया चोला, और "स्वदेशी", "भारत माता की जय" और "विश्वगुरु भारत" के जो नारे लगाये गये वे सभी सम्मिलित रूप से संघ की हिन्दू धार्मिक कट्टरपन्थी राजनीति में एक नयी जान फूँकने का काम कर रहे हैं जिसका फ़ायदा भाजपा को ही होगा। केजरीवाल के पार्टी बनाने से भाजपा नाखुश है क्योंकि उसे लग रहा है कि कांग्रेस विरोधी वोट काटकर यह पार्टी चुनाव में तो उसे ही नुकसान पहुँचायेगी। दूसरी ओर, रामदेव के कारनामों से कुल मिलाकर चुनाव में भाजपा को फ़ायदा मिलने की उम्मीद है। इसीलिए दिल्ली में रामदेव के मंच पर भाजपा के अध्यक्ष नितिन गडकरी पहुँचकर रामदेव के पैर छू रहे थे।

आज बढ़ते आर्थिक संकट के कारण लोगों में पनपते असन्तोष के माहौल में ये आन्दोलन जनता के बीच भ्रम पैदा कर रहे हैं, और जनता के सामने कोई क्रान्तिकारी विकल्प न होने के चलते लोकरंजक नारे देकर उन्हें अपने प्रभाव में ले रहे हैं। आर्थिक ढाँचे में कोई बदलाव किये बिना सिर्फ़ सामाजिक-राजनीतिक ढाँचे को बदलकर किसी समाधान की बात करना हास्यास्पद है। पूँजीवादी व्यवस्था के तार-तार कुर्ते में पैबन्द लगाने की कोशिश करने वाले हर आन्दोलन को यह व्यवस्था अपने हित में अपना और अपने मुताबिक ढाल लेती है जो व्यवस्था के वर्ग चरित्र पर पर्दा डालने में उसकी मदद करता है। आर्थिक ढाँचे में आमूलगामी बदलाव मेहनतकश जनता के क्रान्तिकारी आन्दोलन के द्वारा राज-काज, समाज और उत्पादन के पूरे ढाँचे को बदलकर ही लाया जा सकता है। ऐसे बदलाव का कोई भी कार्यक्रम साम्राज्यवादी और पूँजीवादी शक्तियों द्वारा देश के संसाधनों और जनता की मेहनत की कमाई की लूट पर तुरन्त रोक लगायेगा। यह देश में निवेश की गयी सभी विदेशी कम्पनियों की पूँजी को तुरन्त ज़ब्त करेगा और सभी विदेशी कर्ज़ों को रद्द कर देगा, देश के सभी मठों-मन्दिरों, वक़्फ़ बोर्डों, चर्चों आदि के पास मौजूद खरबों की सम्पत्ति को ज़ब्त कर सामाजिक काम में लगायेगा, देश के सभी बड़े कारख़ानों का प्रबन्धन तुरन्त मज़दूरों की चुनी हुई कमेटियों को सौंप देगा, हर काम करने लायक व्यक्ति को काम करने का अधिकार देगा और काम करने की बाध्यता लागू करेगा, समाज के हर व्यक्ति को रोटी, कपड़ा, शिक्षा, चिकित्सा और घर की सारी मूलभूत सुविधाओं का अधिकार सुनिश्चित करेगा। इस प्रकार तृणमूल स्तर पर आर्थिक सम्बन्धों में परिवर्तन की माँग के बिना सारे नारे यूटोपियाई और भ्रामक हैं जो जनता को बदलाव की इच्छा से विमुख करते हैं और वर्तमान जर्जर पूँजीवादी व्यवस्था में पैबन्द लगाकर उसे चलाने की प्रतिक्रयावादी मानसिकता को बढ़ावा देते हैं।

● राजकुमार

मारुति के मज़दूरों पर हमले का मुँहतोड़ जवाब देने के लिए व्यापक मज़दूर एकता बनाओ

(पेज 1 से आगे)

कम्पनियों के ठेकेदार, लेबर सप्लायर, सिक्योरिटी कम्पनी चलाने वाले, ट्रांसपोर्टर और मज़दूरों के लॉज चलाने जैसे धन्धों से लाखों की कमाई करते हैं। शासक वर्गों की तमाम पार्टियों का रुख भी कम्पनी के ही पक्ष में था। हरियाणा सरकार तो शुरू से ही मज़दूरों के आन्दोलन का दमन करने में कम्पनी के एजेण्ट की तरह काम कर रही थी। उसके एक मंत्री रणजीत सिंह सुरजेवाला ने तो मज़दूरों के स्वत:स्फूर्त गुस्से के विस्फोट को माओवादियों की साज़िश करार दिया। केन्द्र सरकार ने भी बिना किसी जाँच के घोषणा कर दी कि इस घटना के पीछे माओवादियों का हाथ है।

मानेसर की घटना आज देश में मज़दूरों के हालात को बताने वाली एक प्रातिनिधिक घटना है। इसने न सिर्फ़ देश के कारख़ानों के घुटनभरे माहौल और मज़दूरों में सुलगते आक्रोश को उजागर किया है, बल्कि सरकार, प्रशासनिक तन्त्र, पुलिस मशीनरी और कारपोरेट मीडिया के असली चेहरे को भी उघाड़कर नंगा कर दिया है। लेकिन मारुति सुज़ुकी के मज़दूरों का संघर्ष और जुलाई की घटना देश के मज़दूर आन्दोलन के लिए भी एक महत्वपूर्ण घटना है और मज़दूर वर्ग के लिए इससे बेशक़ीमती सबक़ निकलते हैं। केन्द्रीय ट्रेड यूनियनें हमेशा की तरह अपनी दुकानदारी बचाये रखने के लिए कुछ रस्मी क़वायदें कर रही हैं और अपने को वामपंथी क्रान्तिकारी कहने वाले ज़्यादातर संगठन और बुद्धिजीवी एक बार फिर तमाम तरह के भ्रमों और भटकावों के शिकार हैं। इन पर हम आगे विस्तार से चर्चा करेंगे। लेकिन पहले इस घटना और इसकी पृष्ठभूमि के बारे में कुछ बातें करना ज़रूरी है।

मानेसर फैक्ट्री में हुई हिंसा के लिए मैनेजमेण्ट ज़िम्मेदार है, मज़दूर नहीं

18 जुलाई को हिंसा की जो घटना हुई वह किसी भी तरह से पूर्व नियोजित नहीं थी जैसाकि मैनेजमेण्ट और सरकार का दावा है। तमाम ब्यौरों से यह स्पष्ट है कि घटना की शुरुआत 18 जुलाई की सुबह तब हुई जब वेतन वृद्धि में हो रही देरी को लेकर बहस के दौरान एक सुपरवाइज़र ने एक दलित मज़दूर को जातिवादी गाली दी जिसका उस मज़दूर ने प्रतिवाद किया। जब मैनेजमेण्ट ने उस मज़दूर को सस्पेंड कर दिया लेकिन सुपरवाइज़र के खिलाफ़ कोई कार्रवाई नहीं की गयी तो मज़दूरों ने इसका सामूहिक विरोध करना शुरू कर दिया। उन्होंने मारुति सुज़ुकी वर्कर्स यूनियन (एम.एस. डब्ल्यू.यू.) पर हस्तक्षेप करने के लिए दबाव डाला और यूनियन नेताओं तथा मैनेजमेण्ट के अफ़सरों के बीच बातचीत शुरू हुई। बातचीत के दौरान मैनेजमेण्ट लगातार अड़ियल रवैया अपनाये रहा और घण्टों तक कोई नतीजा न निकलते देखकर मज़दूरों में असन्तोष बढ़ रहा था। उन्हें यह भी लग रहा था कि इस घटना को मज़दूरों को और अधिक प्रताड़ित करने के लिए इस्तेमाल किया जा सकता है। उनकी आशंका अनायास नहीं थी क्योंकि पिछले साल अक्टूबर में हुए समझौते के बाद से ही मज़दूरों को तरह-तरह से परेशान और प्रताड़ित करने का सिलसिला चल रहा था। मज़दूरों का कहना है कि दोपहर करीब तीन बजे मैनेजमेण्ट ने सैकड़ों भाड़े के गुण्डों (बाउंसरों) को बुला लिया जिन्होंने मज़दूरों के साथ मारपीट शुरू कर दी। इसके बाद मज़दूरों ने भी जवाबी कार्रवाई की और औज़ारों तथा कार के पुर्ज़ों सहित जो भी उनके हाथ लगा उसे लेकर गुण्डों और उनका साथ दे रहे सुपरवाइज़रों तथा स्टाफ के अन्य लोगों पर पिल पड़े। यह मज़दूरों में महीनों से सुलग रहे गुस्से का विस्फोट था। 'आउटलुक' और 'फ्रंटलाइन' जैसी पत्रिकाओं ने बाउंसरों की मौजूदगी की पुष्टि की है। विभिन्न रिपोर्टों से साफ़ हो चुका है कि हिंसा को भड़काने और फैलाने के लिए मैनेजमेण्ट ज़िम्मेदार था। कई प्रत्यक्षदर्शियों के अनुसार मैनेजरों से कहीं अधिक संख्या में मज़दूर घायल हुए थे। मगर इनकी कहीं चर्चा तक नहीं हुई। अब तक किसी ने इन ब्यौरों का खण्डन नहीं किया है। हालाँकि अगर मैनेजमेण्ट का दावा सही होता तो उसे फैक्ट्री में चप्पे-चप्पे पर लगे कैमरों की रिकार्डिंग सार्वजनिक कर देनी चाहिए थी। गुड़गाँव-मानेसर-धारूहेड़ा की पूरी औद्योगिक पट्टी में बाउंसरों और गुण्डों को भाड़े पर रखना मैनेजमेण्ट की एक आम नीति है। उन्हें हड़ताल तोड़ने, अगुआ मज़दूरों और यूनियन कार्यकर्ताओं पर हमले करवाने, मज़दूरों को आम तौर पर डरा-धमका कर रखने तथा किसी भी तरह से आवाज़ उठाने से रोकने के लिए लगभग सभी कारखानों में इस्तेमाल किया जाता है।

पिछले वर्ष मारुति में जून से लेकर अक्टूबर तक तीन चरणों में चले लम्बे आन्दोलनों के दौरान मज़दूरों की तरफ़ से हिंसा की एक भी घटना नहीं हुई थी। जून में 13 दिन तक मज़दूर कारख़ाने के अन्दर थे, फिर सितम्बर में 33 दिन तक कारख़ाने के बाहर मज़दूर डेरा डाले रहे और अक्टूबर में एक बार फिर कई दिनों तक प्लाण्ट के कई हिस्से मज़दूरों के कब्ज़े में रहे। मैनेजमेण्ट के उकसावों के बावजूद कभी तोड़-फोड़ और हिंसा की एक भी घटना नहीं हुई। फिर आख़िर मज़दूरों का आक्रोश इस कदर क्यों फूट पड़ा? पिछले वर्ष अक्टूबर में मैनेजमेण्ट ने जिस तरह से पैसे, सरकारी दबाव और झूठे वायदों के मेल से समझौता कराया था और मारुति सुज़ुकी इम्प्लाइज़ यूनियन के पूरे नेतृत्व को ख़रीदकर यूनियन को ख़त्म कर दिया था, उसी से स्पष्ट हो गया था कि उसके इरादे नेक नहीं हैं। लगातार हो रहे नुकसान को रोकने के लिए वह किसी तरह हड़ताल ख़त्म कराना चाहता है लेकिन मज़दूरों की माँगों का पूरा करने की उसकी कोई मंशा नहीं है। उसके बाद से बार-बार के वायदों के बावजूद वेतन बढ़ाने के सवाल को मैनेजमेण्ट ने तरह-तरह के बहानों से लटकाकर रखा था। मज़दूरों पर काम का जो भयंकर बोझ पहले से था उसे कम करने के बजाय बढ़ाया जा रहा था और तरह-तरह से उनका उत्पीड़न लगातार बढ़ रहा था। सुपरवाइज़रों और मैनेजरों द्वारा गाली-गलौच, धमकाना और तरह-तरह से मानसिक उत्पीड़न का सिलसिला जारी था। पिछली यूनियन को मैनेजमेण्ट द्वारा ख़त्म कर देने के बाद मज़दूरों ने जो नयी यूनियन बनायी थी उसके नेतृत्व को बहुत से मज़दूर समझौतापरस्त या कमज़ोर मानते थे और वह उनकी लड़ाई पुरज़ोर ढंग से लड़ने में अक्षम दिख रही थी। मैनेजमेण्ट भी यूनियन के नेताओं को मज़दूरों की नज़र में नीचा गिराने का कोई मौक़ा नहीं छोड़ता था। यही वे परिस्थितियाँ थीं जिनके चलते मज़दूरों में हताशा और असन्तोष गहराता जा रहा था और 18 जुलाई को मैनेजमेण्ट की हरकतों ने उसे बढ़ाने और फिर एक उग्र, अराजक विस्फोट के रूप में फट पड़ने के लिए बाध्य किया।

इस पूरे घटनाक्रम में पुलिस की भूमिका कम्पनी के भाड़े के एजेण्ट जैसी रही है। 18 जुलाई को दोपहर में ही कम्पनी ने पुलिस बुला ली थी और एक डी.एस.पी. के नेतृत्व में पुलिस के करीब 300 जवान फैक्ट्री के भीतर मौजूद थे। लेकिन हिंसा को रोकने के लिए पुलिस ने कोई कार्रवाई नहीं की। अब उसी डी.एस.पी. को, जिसका आचरण स्पष्ट सन्देह के घेरे में है, इस मामले की जाँच की ज़िम्मेदारी दे दी गयी है। चौतरफ़ा माँग के बावजूद हरियाणा सरकार ने इस मामले की उच्च स्तरीय जाँच का आदेश नहीं दिया है। मारुति सुज़ुकी के मैनेजमेण्ट को खुश करने में लगी सरकार के दबाव में पुलिस शिकारी कुत्तों की तरह मज़दूरों की धरपकड़ करने, उन्हें टॉर्चर करने और उनके घरवालों को डराने-धमकाने में लगी रही है। पूरे गुड़गाँव-मानेसर-धारूहेड़ा औद्योगिक इलाक़े में पहले से ही क़ानून नाम की कोई चीज़ नहीं है। सारे क़ानून फैक्ट्री मालिकों और इलाक़े के नवधनाढ्यों की जेब में रहते हैं। हरियाणा में करीब तीन दशक पहले बंसीलाल की सरकार के दौरान पूँजीपतियों को निवेश के लिए आमंत्रित करने के लिए यह लुभावना प्रस्ताव दिया गया था कि यहाँ ट्रेड यूनियन गतिविधियों पर कसकर लगाम रखी जायेगी और किसी भी तरह से श्रमिक अशान्ति पैदा नहीं होने दी जायेगी। तब से राज्य की पुलिस और प्रशासनिक तंत्र इस काम में माहिर हो चुके हैं और समय-समय पर पूँजीपतियों के प्रति अपनी वफ़ादारी का बर्बर प्रदर्शन करते रहे हैं। 2005 में होण्डा के मज़दूरों पर हुए पाशविक दमन को कौन भूल सकता है?

इस महत्वपूर्ण आन्दोलन पर संजीदगी से विचार करना और आगे की लड़ाई के लिए सबक़ निकालना ज़रूरी है

मारुति सुज़ुकी के मज़दूरों का संघर्ष हमारे समय का एक महत्वपूर्ण आन्दोलन है। एक तो इसलिए कि यह पूँजीवादी अर्थव्यवस्था के एक बहुत अहम सेक्टर, ऑटोमोबाइल उद्योग, के मज़दूरों का आन्दोलन है जिसमें आज देश के करीब एक करोड़ मज़दूर लगे हुए हैं। दूसरे, यह आन्दोलन एक ऐसे समय में उभरा है जब देश में आम तौर पर मज़दूरों की लड़ाई बिखरी हुई है और मज़दूर आन्दोलन हताशा और ठहराव का शिकार है। राजधानी के नज़दीक और एक बहुत बड़ी औद्योगिक पट्टी के बीचोबीच होने के नाते भी इसने पूरे देश ही नहीं, दुनिया भर में लोगों का ध्यान खींचा है और व्यापक समर्थन भी हासिल किया है। इसके चलते मीडिया से लेकर सरकार तक को अपना रुख कुछ बदलना पड़ा है। अनेक बुर्जुआ अख़बारों में मारुति सुज़ुकी के मज़दूरों की काम की भयंकर स्थितियों और शोषण की तस्वीर उजागर करने वाली रिपोर्टें प्रकाशित हुई हैं और उद्योगपतियों के कुछ संगठन भी अब कह रहे हैं कि कम्पनी को अपने मज़दूरों की हालत पर ज़्यादा ध्यान देना चाहिए। केन्द्र सरकार के मंत्री और केन्द्रीय श्रम मंत्रालय के आला अफ़सर भी फ़रमा रहे हैं कि मज़दूरों के उग्र संघर्षों की बढ़ती घटनाओं की जड़ में कम्पनियों का बढ़ता लालच और अधिकाधिक काम ठेका मज़दूरों से कराने की प्रवृत्ति है। कहने की ज़रूरत नहीं कि इन लोगों का अचानक हृदय परिवर्तन नहीं हो गया है और वे मज़दूरों के हितैषी नहीं बन गये हैं। इनके बदले रुख का सीधा कारण यह है कि बेलगाम शोषण-दमन-उत्पीड़न और अपमान के विरुद्ध देशभर में जगह-जगह मज़दूरों के उग्र विरोध फूट पड़ने की घटनाओं से वे घबराये हुए हैं।

इन सभी घटनाओं में एक और अहम बात यह है कि दशकों से पूँजीवादी व्यवस्था की दूसरी सुरक्षा पंक्ति का काम बख़ूबी कर रहे नकली वामपंथियों की ट्रेड यूनियनें मज़दूरों के आक्रोश पर पानी के छींटे पाने डालने और उन्हें बरगला-फुसलाकर शान्त रखने में ज़्यादा से ज़्यादा नाकाम और अप्रासंगिक होती जा रही हैं। इसलिए भी शासक वर्गों के दूर तक सोचने वाले नुमाइन्दे ज़्यादा चिन्तित हैं। मारुति सुज़ुकी ने भी कहा है कि धीरे-धीरे कम्पनी में ठेके की व्यवस्था समाप्त की जायेगी, या अधिकतर मज़दूरों को स्थायी अनुबन्ध पर रखा जायेगा। तय है कि मारुति के मज़दूरों के जुझारू संघर्ष की बदौलत लम्बे दौर में मज़दूरों को कुछ उपलब्धियाँ ज़रूर हासिल होंगी। कोई भी लड़ाकू संघर्ष पूरी तरह निष्फल कभी नहीं होता है, भले ही तात्कालिक तौर पर उसे कुचल दिया जाये।

पूँजी और श्रम की ताक़तों के बीच लम्बी लड़ाई में मज़दूर जीतने से पहले कई बार हारते हैं। ख़ासकर ऐसे समय में, जब शासक वर्ग पूँजी की ताक़तों के पक्ष में एकजुट और आक्रामक हो, तो ऐसे संघर्षों में तात्कालिक हार कतई अप्रत्याशित नहीं है। लेकिन ऐसी हारों को जीत में बदलने के लिए ज़रूरी है कि सच को स्वीकार किया जाये और आन्दोलन को एक संजीदा, वैज्ञानिक नज़रिये से समझा जाये, इसकी कमियों-कमज़ोरियों और मज़बूत पक्षों की गहरी आलोचनात्मक दृष्टि से पड़ताल की जाये। यह काम आज इसलिए भी बेहद ज़रूरी हो गया है क्योंकि मज़दूर वर्ग की स्वत:स्फूर्तता का गैर-आलोचनात्मक उत्सव मनाने की प्रवृत्ति देखी जा रही है। क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट आन्दोलन के कुछ हिस्सों के साथ-साथ विभिन्न प्रकार के राजनीतिक नौदौलतिये भी मंच से वीर रस की कविता पढ़ने वाले सड़कछाप कवियों की तरह मानेसर में हुई हिंसा को मज़दूरों के संघर्ष के एक रूप की तरह महिमामण्डित करने में लगे हुए हैं। अपने जानलेवा हालात के विरुद्ध मज़दूरों के अराजक, अनियोजित विस्फोट तो उन्नीसवीं सदी की शुरुआत से ही होते रहे हैं और जहाँ भी मज़दूर आन्दोलन अच्छी तरह संगठित नहीं है वहाँ होते ही रहेंगे। मज़दूरों के हिरावल दस्ते, यानी क्रान्तिकारियों का काम उन्हें यह बताना है कि संगठित संघर्ष ही एकमात्र रास्ता है। 18 जुलाई को मज़दूरों ने जो किया उसके लिए उन्हें मजबूर कर दिया गया था, अपने ऊपर होने वाले हमले पर उन्हें जवाबी कार्रवाई तो करनी ही थी। लेकिन जो लोग भावविह्वल होकर इसका स्वागत कर रहे हैं, जैसे यह संघर्ष का कोई रूप हो, वे राजनीतिक रूप से दिवालिये हैं और ऐसे "जनता के मित्र" मज़दूर आन्दोलन को नुकसान ही पहुँचायेंगे। मज़दूरों की स्वत:स्फूर्तता की यह पूजा हमेशा ही अन्तत: दो दिशाओं में जाती है। एक रास्ता अर्थवाद और ट्रेडयूनियनवाद की ओर जाता है और दूसरा अराजकतावाद की दिशा में। दोनों की तार्किक परिणतियाँ एक ही होती हैं जो मज़दूर आन्दोलन को विनाश के गड्ढे में ले जाती हैं।

स्वत:स्फूर्तता की पूजा की इस प्रवृत्ति के कारणों को समझना मुश्किल नहीं है। इसका एक पहलू निश्चित ही राजनीतिक समझ की कमी का है और दूसरा पहलू आन्दोलन के ठहराव-बिखराव से पैदा हुई निराशा और पस्तहिम्मती का है। जिन लोगों के पास मज़दूर वर्ग को जागृत, संगठित, गोलबन्द करने के लम्बे और श्रमसाध्य काम को व्यवस्थित ढंग से करने की न तो समझ है और न ही कोई योजना या कार्यक्रम, वे ही अधकचरे, भाववादी क्रान्तिकारियों की तरह ऐसे संघर्षों से अभिभूत हो उठते हैं और एक

(पेज 14 पर जारी)

मारुति के मज़दूरों पर हमले का मुँहतोड़ जवाब देने के लिए व्यापक मज़दूर एकता बनाओ

(पेज 14 से आगे)

ज़िम्मेदार हिरावल की भूमिका निभाने की कोशिश करने की जगह उनका यशगान करने को ही अपना कर्तव्य मान लेते हैं। विज्ञान पर पकड़ न होने के कारण वे ख़ुद मज़दूरों को व्यापक संघर्षों के लिए संगठित कर पाने के आत्मविश्वास की कमी से ग्रस्त हैं और मज़दूरों की स्वत:स्फूर्त कार्रवाइयों में आशा के स्रोतों की तलाश करते रहते हैं। ऐसे लोगों को स्वत:स्फूर्तता के पीछे भागने की प्रवृत्ति के विरुद्ध लेनिन के लेखन को ग़ौर से पढ़ना चाहिए।

मारुति के आन्दोलन की कमज़ोरियाँ और "वाम" क्रान्तिकारियों के दृष्टिदोष

मारुति का आन्दोलन आज जिस मुकाम पर पहुँचा है उसे पिछले वर्ष तीन चरणों में चले आन्दोलन के दौरान हुई ग़लतियों से काटकर नहीं समझा जा सकता। मारुति के मज़दूरों का आन्दोलन उसी ट्रेडयूनियनवादी राजनीति के दायरे में बँधा रह गया जिसने पिछले कई दशकों में भारत के मज़दूर आन्दोलन को कमज़ोर करते-करते पंगु बना डाला है। मज़दूर कभी इस तो कभी उस केन्द्रीय ट्रेड यूनियन (एटक, सीटू, एचएमएस) के प्रभाव में रहे और उनके बीच से उभरा नया नेतृत्व भी जल्दी ही एक नयी क़िस्म की ट्रेड यूनियन नौकरशाही में ढल गया। वे अपने आन्दोलन को अपनी फ़ैक्ट्री की सीमाओं में बाँधकर ही देखते रहे और अपनी लड़ाई की कठिनाइयों को समझने में विफल रहे। इसी वजह से वे पूरे इलाक़े के मज़दूरों के साथ व्यापक वर्ग एकता क़ायम करने और अपने आन्दोलन को बहुत व्यवस्थित तथा योजनाबद्ध ढंग से चलाने की ज़रूरत को समझने में भी चूक गये।

'बिगुल मज़दूर दस्ता' ने जून में हुई पहली हड़ताल के समय से ही लगातार मज़दूरों के बीच इस बात का प्रचार किया कि आन्दोलन को चरणबद्ध ढंग से संचालित करने के लिए एक ठोस कार्यक्रम होना चाहिए और आन्दोलन को गुड़गाँव-मानेसर-धारूहेड़ा-बावल के पूरे ऑटोमोबाइल बेल्ट में विस्तारित किया जाना चाहिए। दस्ता के कार्यकर्ता मारुति सुज़ुकी इम्प्लाइज़ यूनियन (एम.एस.ई.यू.) के नेतृत्व और आम मज़दूरों को बार-बार बताते रहे कि उनकी लड़ाई प्रबन्धन के कुछ भ्रष्ट अधिकारियों और स्थानीय श्रम विभाग से नहीं थी, जैसा कि बहुतेरे मज़दूर सोचते थे। उनकी लड़ाई सुज़ुकी कम्पनी, हरियाणा सरकार और केन्द्रीय सरकार तथा नवउदारवादी नीतियों से है। जापानी कम्पनियाँ दुनियाभर में अपनी फ़ासीवादी प्रबन्धन तकनीकों के लिए कुख्यात हैं और मज़दूरों को कुचलने के लिए वे किसी भी हद तक जाने के लिए तैयार रहती हैं। हरियाणा को विदेशी निवेश की पसन्दीदा जगह बनाने के लिए, राज्य सरकार ने हमेशा ही अपना नंगा मज़दूर-विरोधी चेहरा दिखाया है, चाहे वह 2006 में होण्डा मज़दूरों की हड़ताल रही हो या अन्य हालिया मज़दूर संघर्ष। भारत सरकार जिन आर्थिक नीतियों को थोप रही है वे मज़दूरों के अतिशोषण के बिना लागू ही नहीं की जा सकती हैं। पूरी दुनिया के पैमाने पर मज़दूरों के अधिकारों, जिसमें यूनियन बनाने का अधिकार भी शामिल है, पर हमले किये जा रहे हैं। इसलिए मारुति के मज़दूरों पर इस हमले का मुकाबला केवल मज़दूरों की व्यापक वर्ग एकता और संघर्ष को सुनियोजित और संगठित ढंग से चलाकर ही किया जा सकता है। बिगुल के साथियों ने आन्दोलन को चरणबद्ध ढंग से चलाने के लिए कई ठोस सुझाव भी उनके सामने रखे। उन्होंने मारुति के साथियों को बताया कि उनके समर्थन में मानेसर-गुड़गाँव में पर्चे बाँटते और सभाएँ करने के दौरान उनका अनुभव यह रहा है कि व्यापक मज़दूर आबादी उनके आन्दोलन का समर्थन करती है मगर इस मौन समर्थन को संघर्ष की एक प्रबल शक्ति में तब्दील करने के लिए सक्रिय प्रयासों और संघर्ष के योजनाबद्ध कार्यक्रम की ज़रूरत है। मारुति के आन्दोलन में उठे मुद्दे गुड़गाँव के सभी मजदूरों के साझा मुद्दे हैं – लगभग हर कारख़ाने में अमानवीय वर्कलोड, जबरन ओवरटाइम, वेतन से कटौती, ठेकेदारी, यूनियन अधिकारों का हनन और लगभग गुलामी जैसे माहौल में काम कराने से मजदूर त्रस्त हैं और समय-समय पर इन माँगों को लेकर लड़ते रहे हैं। बुनियादी श्रम क़ानूनों का भी पालन कहीं नहीं होता। इन माँगों पर अगर मारुति के मजदूरों की ओर से गुडगाँव, मानेसर, धारूहेड़ा, बावल बेल्ट के लाखों मज़दूरों का आह्वान किया जाता तो एक व्यापक जन-गोलबन्दी की जा सकती थी और राज्य पर भारी दबाव बनाया जा सकता था। ख़ासकर सितम्बर 2011 में 33 दिन तक चली तालाबन्दी के दौरान मारुति के हज़ारों युवा मज़दूर खाली बैठे थे क्योंकि उनके पास आन्दोलन का कोई काम नहीं था। गेट पर पारी बाँधकर धरना देने के लिए कुछ सौ मज़दूर पूरी मुस्तैदी से तैनात रहते थे। लेकिन उनके अलावा एक बड़ी संख्या ऐसी थी जिसकी टीमें बनाकर व्यापक प्रचार अभियान चलाया जा सकता था। एमएसईयू का नेतृत्व इस काम के महत्व को कितना कम करके देखता था इसे इस तथ्य से ही समझा जा सकता है कि इतने लम्बे चले आन्दोलन के दौरान उनकी ओर से कोई पर्चा या पोस्टर तक नहीं निकाला गया।

केन्द्रीय यूनियनों की तो जुझारू संघर्ष की नीयत ही नहीं थी और न अब उनमें ऐसा करने का माद्दा रह गया है। वे अपने पार्टी मुखपत्रों और ट्रेड यूनियन बुलेटिनों में मारुति के मज़दूरों के बारे में बस लम्बे-चौड़े लेख लिखते रहे और उनकी स्थानीय इकाइयों के लोग नेतृत्व हथियाने की आपसी होड़ा-होड़ी में लगे रहे। मगर वाम क्रान्तिकारी संगठन और बुद्धिजीवी भी न केवल इस बात को समझने में नाकाम रहे कि फ़ैक्ट्री की सीमाओं से बँधे रहकर आन्दोलन मैनेजमेण्ट और राज्य की सम्मिलित शक्ति से लड़कर जीत नहीं पायेगा, बल्कि उल्टे उन्होंने 'बिगुल' पर आरोप लगाया कि ये लोग मज़दूरों को हतोत्साहित कर रहे हैं। उनका कहना था कि जब कोई संघर्ष चल रहा हो तब उसके प्रति आलोचनात्मक बातें नहीं की जानी चाहिए। इनकी बात का यही मतलब निकलता था कि अगर कहीं लड़ रहे मज़दूर ग़लतियाँ भी कर रहे हों तो उस वक़्त केवल किनारे खड़े होकर थपड़ी पीटना और आह-वाह करना चाहिए और जब वह आन्दोलन अपनी कमज़ोरियों के कारण असफलता का शिकार हो जाये तब उसकी आलोचना और मीनमेख करनी चाहिए (जैसाकि ऐसे कुछ लोग अब कर रहे हैं)! मारुति के यूनियन नेतृत्व की कोई कमज़ोरी ऐसे लोगों को तब नज़र ही नहीं आ रही थी। सोनू गुज्जर और शिव कुमार जैसे एमएसईयू के नेताओं का भारत में मज़दूर वर्ग के संघर्ष के नये पथप्रदर्शकों के रूप में यशगान किया जा रहा था। जब पूरा यूनियन नेतृत्व आन्दोलन की पीठ में छुरा भोंककर लाखों रुपये लेकर कम्पनी ही छोड़ गया तब भी ये लोग उसे केवल कम्पनी और सरकार द्वारा आज़माये गये साम-दाम-दण्ड-भेद के हथकण्डों का नतीजा बताते रहे और शुरू से मौजूद रही कमज़ोरियों की ओर से आँखें मूँदे रहे।

अराजक विस्फोट नहीं हो सकते हैं मज़दूर वर्ग का रास्ता

आज संकटग्रस्त पूँजीवाद और राज्यसत्ता की बढ़ती आक्रामकता के ख़िलाफ़ मज़दूरों के गुस्से के विस्फोट की घटनाएँ जगह-जगह हो रही हैं। मारुति की घटना से पहले तमिलनाडु के श्रीपेरम्बुदूर, आन्ध्र प्रदेश के विशाखापत्तनम, एनसीआर के साहिबाबाद आदि जगहों पर दमन-उत्पीड़न के ख़िलाफ़ मज़दूरों के हिंसक विरोध की घटनाएँ हुई हैं। गुड़गाँव में भी पिछले अप्रैल महीने में एक के बाद एक दो बड़ी घटनाएँ हुईं जिनमें हज़ारों मज़दूरों ने कम्पनी के अफ़सरों और पुलिस बल को खदेड़कर रख दिया। मगर मज़दूर भी अपने अनुभवों से जानते हैं कि गुस्से के ऐसे अन्धे विस्फोटों से आगे का कोई रास्ता नहीं निकलता। दूसरी ओर यह भी सच है कि आज जिन हालात में मज़दूर जी रहे हैं और काम कर रहे हैं वे उन्हें ऐसी बग़ावतों की ओर लगातार धकेल रहे हैं। अगर मज़दूर वर्ग को पूँजीवादी लूट के ख़िलाफ़ दूरगामी लड़ाई के लिए और साथ ही मज़दूर वर्ग की तात्कालिक आर्थिक और राजनीतिक माँगों के लिए सही ढंग से संगठित नहीं किया जायेगा और योजनाबद्ध तैयारी के साथ संघर्षों में नहीं उतारा जायेगा तो ऐसी छोटी-छोटी बग़ावतें होती रहेंगी और कुचली जाती रहेंगी।

हम व्यापक जन विद्रोहों के तूफ़ानों का स्वागत करते हैं लेकिन व्यापक जन विद्रोह स्वत:स्फूर्त तरीक़े से पैदा नहीं हो जाते बल्कि इसके लिए तैयारी करनी पड़ती है। मेहनतकश जनता के जीने के हालात जब कठिन से कठिनतर होते जायें और कोई क्रान्तिकारी विकल्प सामने मौजूद न हो तो अक्सर जनउभारों के रूप में जनता का गुस्सा फूट पड़ता है जो कभी-कभी पूरे देश या बड़े इलाक़े में फैल जाते हैं। निश्चित ही क्रान्तिकारी ताक़तों को ऐसे जनउभारों की लहरों में कूद पड़ना चाहिए और उसे क्रान्तिकारी दिशा देने की पूरी कोशिश अपनी ताक़त के हिसाब से करनी चाहिए। लेकिन एक जनउभार और स्वत:स्फूर्त ढंग से एक ही कारख़ाने में होने वाले विद्रोह के बीच फ़र्क़ किया जाना चाहिए।

मज़दूरों ने पूँजीवादी शोषण के ख़िलाफ़ शताब्दियों की अपनी लड़ाई के दौरान क़दम-ब-क़दम अपने अनुभवों से लड़ना सीखा है। शुरू-शुरू में जब उन्हें पूँजीवादी शोषण की समझ नहीं थी तो वे अक्सर मशीनों को ही अपनी बर्बादी का कारण समझ लेते थे और मशीनों की तोड़फोड़ या कारख़ानों को आग लगा देने के रूप में उनका विद्रोह सामने आता था। लेकिन जल्दी ही उन्हें लग गया कि इससे उनकी समस्याओं का हल नहीं होगा और उन्होंने संगठित होकर लड़ने की ज़रूरत को समझ लिया। मार्क्सवाद के रूप में एक वैज्ञानिक विचारधारा से लैस होने के बाद मज़दूर वर्ग को वह हथियार मिल गया जिसके बूते पर वह अपनी लड़ाई को अंजाम तक यानी कि पूँजीवाद को ख़त्म कर समाजवाद लाने तक पहुँचा सकता था। मज़दूर आन्दोलन के लम्बे इतिहास के अनुभवों से समृद्ध इस विज्ञान ने मज़दूर वर्ग को अपने दोस्तों और दुश्मनों की सही-सही पहचान करने, अपनी लड़ाई की रणनीति और रणकौशल चुनने और सही ढंग से संगठित होने का ज्ञान दिया है। भारत जैसे देशों में पूँजीवाद के बर्बर शोषण और उत्पीड़न का सामना कर रहा मज़दूर वर्ग आज वैचारिक रूप से निहत्था खड़ा है क्योंकि उसे वैज्ञानिक विचारधारा से लैस करने का ज़िम्मा जिन शक्तियों के कन्धों पर था वे अपनी ज़िम्मेदारी निभाने में नाकाम रही हैं। ऐसे में किसी-किसी कारख़ाने में मज़दूरों के क्रोध का फूट पड़ना स्वाभाविक है। लेकिन अगर इससे मज़दूर वर्ग के लिए आवश्यक सबक़ न निकाले जायें और अनालोचनात्मक ढंग से इसे "क्रान्तिकारी हिंसा" के रूप में महिमामण्डित किया जाये, इसे वर्ग संघर्ष का एक रूप बताया जाये, तो यह मज़दूर वर्ग को भ्रमित करना ही होगा।

आज तमाम अग्निमुखी बुद्धिजीवियों की बातें सुनकर हमें याद आता है कि रूस में 1905-07 के दौरान बहुत सारे भावुक निम्न पूँजीवादी बुद्धिजीवी मार्क्सवादी बन गये थे। लेनिन ने भी इसकी चर्चा की है कि जब क्रान्ति कुचल दी गयी तो ऐसे तमाम भाववादी "मार्क्सवादी" निम्न पूँजीवादी बुद्धिजीवी भाग खड़े हुए और बौद्धिक अरण्यरोदन करते हुए मज़दूरों, क्रान्तिकारियों, सरकार और पूरी दुनिया को कोसने लगे। आज भी कुछ ऐसा ही दृश्य दिख रहा है जब चारों ओर आन्दोलन ठहराव और बिखराव के शिकार हैं और क्रान्ति की लहर पर प्रतिक्रान्ति लहर हावी है, क्रान्तिकारी शक्तियाँ वैचारिक विभ्रम में हैं, तो कुछ लोग विश्लेषण के नाम पर अनर्गल बुद्धिविलास में लगे हुए हैं। मज़दूर वर्ग के हिरावल अगर ईमानदारी से अध्ययन-मनन करेंगे और क्रान्तिकारी व्यवहार से जुड़े रहेंगे तो वे तो देर-सबेर सही रास्ते की तलाश कर लेंगे, लेकिन ऐसे बात-बहादुरों का क्या हश्र होगा, यह इतिहास पहले कई बार बता चुका है।

आज पूँजीवाद का संकट लगातार गहरा रहा है। लगातार फैलती मन्दी की मार से पूरी दुनिया की अर्थव्यवस्थाएँ सिकुड़ रही हैं और भारत की अर्थव्यवस्था भी संकट के दलदल में धँस रही है। ऐसे में हमेशा की तरह संकट की सबसे अधिक मार मज़दूरों को ही झेलनी है। उत्पादन की पूरी लागत में मज़दूरी का हिस्सा लगातार घटता जा रहा है और आने वाले समय में मज़दूरों के अधिकारों पर और भी चोट पड़नी है। आज भी 95 प्रतिशत से अधिक मज़दूरों को न्यूनतम क़ानूनी अधिकार तक हासिल नहीं हैं। पूँजीवादी सरकारें लोकतंत्र के तमाम मुखौटे उतारकर पूँजीपति वर्ग की मैनेजिंग कमेटी की भूमिका पूरी बेशर्मी से निभा रही हैं। ऐसे में मज़दूर वर्ग के सामने एक ही रास्ता है कि वह दलाल नेतृत्व को धता बताकर योजनाबद्ध तरीक़े से संगठित होने की शुरुआत करे और छोटी-छोटी लड़ाइयों से सीखते हुए बड़ी लड़ाई की तैयारी में जुट जाये।

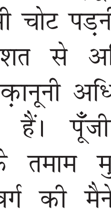

...जो कोई भी मज़दूर आन्दोलन की स्वयंस्फूर्ति की पूजा करता है, जो कोई भी "सचेतन तत्व" की भूमिका को, सामाजिक-जनवाद (मज़दूर वर्ग की क्रान्तिकारी राजनीति – सं.) की भूमिका को कम करके आँकता है, वह चाहे ऐसा करना चाहता हो या न चाहता हो, पर असल में वह मज़दूरों पर बुर्जुआ विचारधारा के असर को मज़बूत करता है।

– **लेनिन** (*'क्या करें?'* पुस्तक से)

साहित्य का पन्ना

दंगा

1.
आओ भाई बेचू आओ
आओ भाई अशरफ आओ
मिल जुल करके छुरा चलाओ
मालिक रोजगार देता है
पेट काट–काट कर छुरा मँगाओ
फिर मालिक की दुआ मनाओ
अपना–अपना धरम बचाओ
मिलजुल करके छुरा चलाओ
आपस में कटकर मर जाओ
छुरा चलाओ धरम बचाओ
आओ भाई आओ आओ

2.
छुरा भोंककर चिल्लाये –
हर हर शंकर
छुरा भोंककर चिल्लाये –
अल्लाहो अकबर
शोर खत्म होने पर
जो कुछ बच रहा
वह था छुरा
और
बहता लोहू...

3.
इस बार दंगा बहुत बड़ा था
खूब हुई थी
शून की बारिश
अगले साल अच्छी होगी
फसल
मतदान की

● गोरख पाण्डेय

रोजी रोटी का
सवाल खड़ा करती है जनता
शासन कुछ देर सिर खुजलाता है
एकाएक साम्प्रदायिक फसाद शुरू हो
जाता है
हर हाथ के लिए काम माँगती है
जनता
शासन कुछ देर विचार करता है
एकाएक साम्प्रदायिक फसाद शुरू हो
जाता है
अपने बुनियादी हक़ों का
हवाला देती है जनता
शासन कुछ झपकी लेता है
एकाएक साम्प्रदायिक फसाद शुरू हो जाता है
साम्प्रदायिक फसाद शुरू होते ही
हरक़त में आ जाती हैं बंदूकें
स्थिति कभी गम्भीर
कभी नियंत्रण में बतलाई जाती है
एक लम्बे अरसे के लिए
स्थगित हो जाती है जनता
और उसकी माँगें
इस सम्पूर्ण प्रक्रिया में शासन
अपनी चरमराती कुर्सी को
ठोंकपीट कर पुनः ठीक
कर लेता है।

● नरेन्द्र जैन

दोहे

हाट लगा है धर्म का भक्त जनन को छूट।
जान माल सब हैख्रहाँ लूट सकै तो लूट।।
राजा पण्डित मौलवी सब मिलि कीन्हीं घात।
जीभ निकाले आ रही महाकाल की रात।।
जूठी हड्डी फेंककर औ' कुत्तों को टेर।
अपने–अपने महल में सोये पड़े कुबेर।।
घर–आँगन मातम मचे धरती पड़े दरार।
ना चहिए ऐसे हमें कलश और मीनार।।

● अब्दुल बिस्मिल्लाह

हिन्दू या मुसलमान के अहसासात को मत छेड़िये
अपनी कुरसी के लिए ज़ज़्बात को मत छेड़िये
हममें कोई हूण कोई शक कोई मंगोल है
दफ़्न है जो बात अब उस बात को मत छेड़िये
ग़लतियाँ बाबर की थीं जुम्मन का घर फिर क्यों जले
ऐसे नाजुक वक़्त में हालात को मत छेड़िये
है कहाँ हिटलर हलाकू जार या चंगेज़ ख़ाँ
मिट गये सब कौम की औक़ात को मत छेड़िये
छेड़िये इक जंग मिलजुल कर ग़रीबी के ख़िलाफ़
दोस्त मेरे मजहबी नग़मात को मत छेड़िये।

● अदम गोंडवी

कविता

हम हैं ख़ान के मज़दूर

हम हैं ख़ान के मज़दूर
हमारा इस्तेहसाल इस्तेमार की बुनियाद है!

हमारी तज़लील बादशाहों का ताज है
हर दौर में हम, हर ज़माने में हम
ज़िल्लत हो मस्केनात के तीन खाते रहे
जान जोखिम में डाल कर अपनी
तिजोरी गोरों की हर दम भरते रहे
सबह–ए–आज़ादी आयी जब,मुस्कुराये हम
यह सोचकर गोरे आकाओं से मिली है निजात
ज़िन्दगी सुख से होगी बसर अब
लेकिन हम थे बेखबर कि, हमलोग
हैं फ़क़त ख़ान के मज़दूर
नहीं हक़ हमारा आज़ादी पर है
नहीं हक़ हमारा तरक्क़ी पर है
ख़ून थूकते थे हम हर जश्न में
ख़ून जलाकर सियाही क़बूलते थे हम
ख़ून और सियाही में लिपटे थे हम
ख़ून और सियाही में लिपटे हैं हम!

ज़मीन की तहों से लाये हैं हीरे
ज़मीन की तहों से खींचे खनज
घुट घुट के ख़ानों में हँसते रहे
मुस्कुराये तो आँसू टपकते रहे

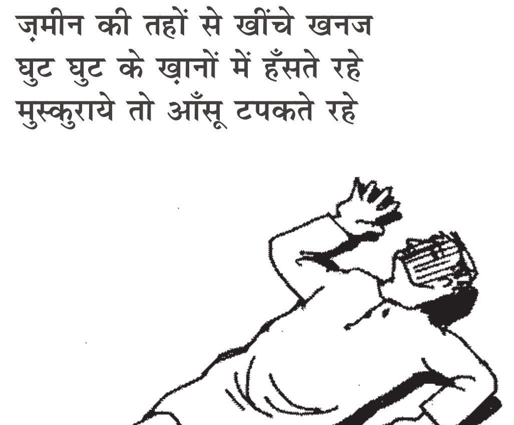

ज़मीन की सतह पर आता रहा इंक़लाब
ज़मीन तहों में हम मरते रहे, जीते रहे
शुमाल ओ जुनूब के हर मुल्क में हम
ज़मीन में दब दब के खामोश
होते रहे जान बहक़, लाशों पर अपनी कभी
कोई आँसू बहाने वाला नहीं सतह ए ज़मीन पर
हम
एक अजनबी हैं फ़क़त ज़मीन के वासियों के
लिये!
हम हैं खान के मज़दूर
हमारा इस्तेहसाल इस्तेमार की बुनियाद है!

● मुसाब इक़बाल

इस्तेहसाल – हासिल, तज़लील – अपमान
शुमाल ओ जुनूब – पूरब और पश्चिम

RNI No. UPHIN/2010/36551
डाक पंजीयन: SSP/LW/NP-319/2011-2013
प्रेषित डाकघर: आर.एम.एस. चारबाग, लखनऊ
प्रेषित तिथि: दिनांक 20 प्रत्येक माह

भारतीय उपमहाद्वीप में साम्प्रदायिक उभार और मज़दूर वर्ग

(पेज 1 से आगे)

है, पूँजीवादी आर्थिक संकट से उत्पन्न गहरे सामाजिक असन्तोष और गुस्से से निपटने के लिए शासक वर्ग तरह-तरह के हथकंडे अपना कर जनता के विभिन्न हिस्सों को आपस में बाँटने की साज़िश रच रहा है और जनता में समस्याओं के कारणों के प्रति भ्रम फैला रहा है। इसी साज़िश के नतीजे के तौर पर एक ओर खोखले क़िस्म के सामाजिक आन्दोलन (जिनको नौटंकी कहना ज़्यादा सटीक होगा) देखने में आये जिन्होंने मौजूदा व्यवस्था के 'सेफ्टी वाल्व' का काम बखूबी अंज़ाम दिया है, वहीं दूसरी ओर साम्प्रदायिक माहौल बिगाड़कर ग़ैर-मुद्दों को मुद्दा बनाया जा रहा है और रोजी-रोटी से जुड़े असली मुद्दों को पृष्ठभूमि में ढकेला जा रहा है। ऐसा पहली बार नहीं हो रहा है कि आर्थिक संकट और जबर्दस्त सामाजिक आक्रोश से लोगों का ध्यान हटाने के लिए शासक वर्ग जंज़ीर में बँधे फ़ासीवादी कुत्ते को जनता की तरफ दौड़ा रहा है। साथ ही साथ मौके का फायदा उठाते हुए देश की सुरक्षा के नाम पर बचे-खुचे बुर्जुआ जनवादी 'स्पेस' को भी ज़्यादा से ज़्यादा सिकोड़ने की कोशिश कर रहा है। तमाम वेबसाइटों और 'सोशल मीडिया' पर पाबन्दियाँ लगाना यही दर्शाता है।

साम्प्रदायिकता की इस नई लहर के उफ़ान पर होने से बुर्जुआ राजनीति के सभी चुनावी मदारियों के चेहरे चमक उठे हैं क्योंकि उनको बैठे बिठाये एक ऐसा मुद्दा मिल गया है जिसके सहारे वे अपनी डूबती नैय्या को बचाने की आस लगा रहे हैं। कोई हिन्दुओं का हितैषी होने का दम भर रहा है तो कोई मुसलमानों का रहनुमा होने का दावा कर रहा है और जो ज़्यादा शातिर हैं वो धर्मनिरपेक्षता की गोट फेंक अपना हित साध रहे हैं। क़िस्म-क़िस्म के घपलों-घोटालों में आकण्ठ डूबी कांग्रेस को अपनी लूट-पाट से लोगों का ध्यान बँटाने के लिए इससे बेहतर मुद्दा नहीं मिल सकता था। वहीं दूसरी ओर भ्रष्टाचार और अपनी नई पीढ़ी के नेताओं के बीच की आपसी कलह से त्रस्त भाजपा को भी एक ऐसा मुद्दा सालों बाद मिला है जिसमें उसके कार्यकर्ताओं में पनप रही निराशा को दूर कर एक नई साम्प्रदायिक ऊर्जा का संचार करने की सम्भावना निहित है। उधर समाजवादी पार्टी को भी उत्तर प्रदेश में अपनी नवनिर्मित सरकार की विफलताओं से जनता का ध्यान हटाने के लिए एक ऐसा मुद्दा मिल गया है जिसकी उसे तलाश थी। ग़ौरतलब है कि असम की हिंसा के ख़िलाफ़ लखनऊ, इलाहाबाद, आज़मगढ़ और बरेली में हिंसात्मक प्रदर्शन हुए।

असम की हिंसा के बाद हैदराबाद के मज़लिस-ए-इत्तेहादुल मुसलमीन और दक्षिण भारत के पॉपुलर फ्रंट ऑफ इंडिया जैसे इस्लामिक कट्टरपंथी संगठनों ने मुस्लिम युवाओं के ''रैडिकलाइजेशन'' की तीसरी लहर (पहली लहर बाबरी मस्जिद के गिरने के बाद और दूसरी गुजरात के दंगों के बाद) के आने की चेतावनी दी थी। यह महज़ संयोग नहीं है कि इस चेतावनी के फ़ौरन बाद ही आज़ाद मैदान की घटना घटी और पूर्वोत्तर राज्यों के नागरिकों को खौफ़ज़दा करने के मक़सद से 'एसएमएस' और 'सोशल मीडिया' के ज़रिये अफ़वाहें उड़ायी गयीं जिसके फलस्वरूप पूर्वोत्तर राज्यों की प्रवासी जनता का बड़ा हिस्सा दक्षिण भारत के महानगरों से पलायन करने को मज़बूर हुआ। ख़बरों के अनुसार अफ़वाहें फैलाने की यह संगठित मुहिम भारत के अलावा पाकिस्तान और सऊदी अरब से संचालित की गयीं जिसमें असम की समस्या की जटिलता का सरलीकरण करके उसे साम्प्रदायिक रंग दिया गया और म्यांमार के रोहिंग्या मुसलमानों के ख़िलाफ़ हुई हिंसा को बढ़ा-चढ़ाकर बताया गया और उसका बदला चुकाने की बात की गयी। इन घटनाओं से यह साफ़ ज़ाहिर है कि मुस्लिम युवाओं के अच्छे-खासे हिस्से पर इस्लामिक कट्टरपन्थी ताक़तों का प्रभाव न सिर्फ़ क़ायम है बल्कि बढ़ रहा है।

इस्लामिक कट्टरपन्थ की सर्व-इस्लामवादी वहाबी और सलाफ़ी धारायें पूरी दुनिया में मुस्लिम युवाओं को प्रभावित कर रही है और अमेरिका पर 2001 में हुए हमले और उसके पश्चात हुए अफगानिस्तान युद्ध और इराक़ युद्ध के बाद से तो और भी तेजी से आगे बढ़ी है। यह एक खुला रहस्य है कि ये धारायें पश्चिमी साम्राज्यवाद की उपज हैं, उसके शह पर पली-बढ़ी हैं और आज भस्मासुर की तरह अपने सर्जक को ही मिटाने पर तुली हैं। लेकिन इस क़िस्म की कट्टरपन्थी धारायें चाहे जितनी गरमा-गरम बातें करें, चाहे जितना ये साम्राज्यवाद पर हमले करें, अन्तिम विश्लेषण में ये पूँजीवाद और साम्राज्यवाद के ही हितों को साधती हैं। ग़ौरतलब है कि लेनिन ने तीसरे कम्युनिस्ट इंटरनेशनल की दूसरी कांग्रेस में सर्व-इस्लामवाद को एक घनघोर प्रतिक्रियावादी धारा क़रार दिया था क्योंकि यह भूस्वामियों, खानों और मुल्लाओं को मज़बूत करती हैं। लेनिन ने मेहनतकशों की धारा को इसके ख़िलाफ़ खुलकर संघर्ष करने का आह्वान किया था।

इस्लामिक कट्टरपन्थ का उभार हिन्दू कट्टरपंथियों के लिए मुँहमाँगी मुराद के समान है। इस्लामिक कट्टरपन्थी मुसलमानों के हितैषी होने का कितना भी दम भरें इनकी हरक़तें ग़रीब और बदहाल मुसलमानों को फासीवाद के भारतीय संस्करण के सामाजिक प्रयोगों की भेंट चढ़ाने के लिए ज़मीन तैयार करने से ज़्यादा और कुछ नहीं कर सकतीं। एक ऐसे समय में जब राम मन्दिर का मुद्दा बासी पड़ चुका है और भगवा आतंकवाद की परिघटना के सामने आने से हिन्दू कट्टरपंथियों की साख़ कम हो रही थी, हाल के घटनाक्रम ने भगवा ध्वजाधारियों में मानो नई जान फूँक दी है। हालाँकि संघी कुनबे के तमाम संगठन हालिया घटनाओं से पहले भी भारतीय मुसलमानों को पाकिस्तान और बांग्लादेश परस्त सिद्ध करने के लिए तमाम घटिया हथकंडे और साज़िशें रचते आये हैं, लेकिन अभी तक साम्प्रदायिक माहौल बिगाड़ने के अपने मक़सद में बहुत ज़्यादा सफल नहीं हो पा रहे थे। मौक़े का फ़ायदा उठाते हुए हिन्दुत्ववादियों ने मुसलमानों के ख़िलाफ़ नफ़रत फैलाने की अपनी सरगर्मियों में यकायक तेज़ी ला दी है। इस घटनाक्रम के बाद भाजपा पूर्वोत्तर के राज्यों तक अपनी राजनीतिक पहुँच फैलाने के अपने सपने को हक़ीक़त में बदलने का मौका भी देख रही है।

इस प्रकार असम के बोडोलैण्ड क्षेत्र में महीने भर चली हिंसा, जो वैसे तो असम के चार जिलों तक ही सीमित थी, की अनुगूँजें देखते ही देखते समूचे भारतीय उपमहाद्वीप में सुनायी पड़ने लगीं। मुख्यतः बोडो जनजाति और मुस्लिम आबादी के बीच हुई इस बर्बर हिंसा में लगभग 100 लोगों की जानें गयीं और 4 लाख से ज़्यादा लोग अपने घर-गाँव से विस्थापित होकर बेहद अमानवीय हालात वाले शरणार्थी शिविरों में रहने पर मज़बूर हो गये। इस हिंसा का सबसे त्रासद पहलू यह रहा कि इसके शिकार ज़्यादातर लोग बेहद ग़रीब तबके के मेहनतकश लोग थे जिन्हें अपनी जीविका की तलाश में दर-दर भटकने को मज़बूर होना पड़ता है। बोडोलैण्ड क्षेत्र बेहद पिछड़ा हुआ है और इस इलाके में रहने वाली बोडो सहित अन्य जनजातियाँ और मुस्लिम समुदाय की अधिकांश आबादी भूमि पर निर्भर होने के कारण एक ओर तो विपन्नता की ज़िन्दगी बिताने को मज़बूर हैं वहीं दूसरी ओर वो अपनी बदहाली का ज़िम्मेदारी भारतीय राज्य द्वारा उस क्षेत्र में विकास कराने में विफलता पर डालने की बजाय दूसरी जनजातियों और समुदायों पर थोपती आयी हैं। वहाँ के स्थानीय नेता और प्रादेशिक स्तर के नेता भी अपने शासन की विफलताओं पर पर्दा डालने के मक़सद से इस प्रकार की साम्प्रदायिक नफ़रत को हवा देते आये हैं। इस बर्बर हिंसा ने यह भी साबित कर दिया है कि स्वायत्तशासी बोडोलैण्ड टेरिटोरियल काउंसिल जो 2003 में बोडो जनजाति की लम्बे समय से चली आ रही माँग के बाद बनायी गयी थी वह पूरी तरह विफ़ल रही है। यही नहीं इस काउंसिल में चुने गये कई नेता खुले आम इन दंगों का समर्थन करते हुए पाये गये।

साम्प्रदायिक ध्रुवीकरण बढ़ाने की अपनी घिनौनी मानसिकता का परिचय देते हुए, दक्षिणपन्थी राजनीति के प्रचारकों और समर्थकों ने इस पूरी हिंसा का सरलीकरण करते हुए इसकी ज़िम्मेदारी बांग्लादेश से हुए गैर-कानूनी आव्रजन और 'बांग्लादेशी घुसपैठियों' पर डाली। भारतीय मीडिया के बड़े हिस्से ने भी इस दुष्प्रचार को अनालोचनात्मक दृष्टि से लेते हुए इसे पूरे देश में फैलाने में अपनी भूमिका अदा की कि असम में रहने वाली मुस्लिम आबादी के अधिकांश लोग बांग्लादेशी घुसपैठिये हैं। जबकि सच्चाई यह है कि असम की मुस्लिम आबादी का अधिकांश हिस्सा 1971 से पहले पूर्वी पाकिस्तान और 1947 से पहले पूर्वी बंगाल से पलायित होकर असम में आकर बसे लोग हैं। 1985 के असम समझौते में भी यह माना गया था कि 1971 से पहले भारत की ओर पलायित होने वाली असम की मुस्लिम आबादी को भारत की नागरिकता मिलनी चाहिए। यदि इस विस्थापित आबादी को एक योजनाबद्ध और विकेन्द्रीकृत तरीक़े से बसाया गया होता तो इस क़िस्म की हिंसक घटनाओं पर रोक लगायी जा सकती थी। इसलिए केन्द्र सरकार इस हिंसा के लिए अपनी ज़िम्मेदारी से पल्ला नहीं झाड़ सकती।

जनगणना के आँकड़ों से इस बात का कोई प्रमाण नहीं मिलता है कि 1971 के बाद असम की मुस्लिम आबादी में देश के स्तर पर मुस्लिम आबादी की वृद्धि-दर के मुक़ाबले कोई विचारणीय बढ़ोत्तरी हुई है। ऐसे में असम की समूची मुस्लिम आबादी को घुसपैठिया क़रार देना एक साज़िश है और मज़दूर आन्दोलन को इस साज़िश का पर्दाफ़ाश करना होगा।

मज़दूर वर्ग के नज़रिये से देखा जाये तो मज़दूरों का अपना कोई राष्ट्र नहीं होता। राष्ट्र-राज्यों का मौजूदा ढाँचा हमेशा से नहीं रहा है और वह हमेशा नहीं रहेगा। राष्ट्र-राज्यों की परिघटना पूँजीवाद के उदय के साथ अस्तित्व में आयी है और पूँजीवाद के विघटन के साथ ही मौजूदा राष्ट्र-राज्यों का अस्तित्व भी क्रमशः विलुप्त होता जायेगा। पूँजीवाद जहाँ एक ओर राष्ट्र-राज्यों की सीमाओं के आर-पार पूँजी के प्रवाह में आने वाली सारी बाधाओं को ख़त्म करता जा रहा है वहीं दूसरी बड़ी ही बेशर्मी से मज़दूरों की बेरोकटोक आवाजाही पर तमाम बन्दिशें लगाता जा रहा है। दुनिया भर के शासक अपने हितों को साधने के लिए मज़दूरों को आपस में लड़ाने की तमाम साज़िशें करते आये हैं और करते रहेंगे। लेकिन हमें यह बात हमेशा याद रखनी चाहिए दुनिया के सभी देशों के मेहनतकश नागरिक चाहे वो किसी भी धर्म को मानने वाले हों या कोई भी भाषा बोलने वाले हों, हमारे मित्र हैं और दुनिया के सभी देशों के शासक हमारे शत्रु। इसी सच्चाई को रेखांकित करने के लिए मज़दूर वर्ग के महान शिक्षक कार्ल मार्क्स ने यह अमर नारा दिया था कि 'दुनिया के मज़दूरो एक हो।' आज जब शासक वर्ग मज़दूरों को बाँटने की नई-नई साज़िशें रच रहा है, यह नारा पहले से कहीं ज़्यादा प्रासंगिक है।

● आनन्द सिंह

भगतसिंह के जन्म की 105वीं वर्षगाँठ (28 सितम्बर) के अवसर पर

लोगों को परस्पर लड़ने से रोकने के लिए वर्ग-चेतना की ज़रूरत है

...लोगों को परस्पर लड़ने से रोकने के लिए वर्ग-चेतना की ज़रूरत है। ग़रीब मेहनतकश व किसानों को स्पष्ट समझा देना चाहिए कि तुम्हारे असली दुश्मन पूँजीपति हैं, इसलिए तुम्हें इनके हथकण्डों से बचकर रहना चाहिए और इनके हत्थे चढ़ कुछ न करना चाहिए। संसार के सभी ग़रीबों के, चाहे वे किसी भी जाति, रंग, धर्म या राष्ट्र के हों, अधिकार एक ही हैं। तुम्हारी भलाई इसी में है कि तुम धर्म, रंग, नस्ल और राष्ट्रीयता व देश के भेदभाव मिटाकर एकजुट हो जाओ और सरकार की ताक़त अपने हाथ में लेने का यत्न करो। इन यत्नों में तुम्हारा नुक़सान कुछ नहीं होगा, इससे किसी दिन तुम्हारी ज़ंजीरें कट जायेंगी और तुम्हें आर्थिक स्वतन्त्रता मिलेगी। ...

इन दंगों में वैसे तो बड़े निराशाजनक समाचार सुनने में आते हैं, लेकिन कलकत्ते के दंगों में एक बात बहुत ख़ुशी की सुनने में आयी। वह यह कि वहाँ दंगों में ट्रेड यूनियनों के मज़दूरों ने हिस्सा नहीं लिया और न ही वे परस्पर गुत्थमगुत्था ही हुए, वरन सभी हिन्दू-मुसलमान बड़े प्रेम से कारख़ानों आदि में उठते-बैठते और दंगे रोकने के भी यत्न करते रहे। यह इसलिए कि उनमें वर्ग-चेतना थी और वे अपने वर्गहित को अच्छी तरह पहचानते थे। वर्ग-चेतना का यही सुन्दर रास्ता है, जो साम्प्रदायिक दंगे रोक सकता है। ...

1914-15 के शहीदों ने धर्म को राजनीति से अलग कर दिया था। वे समझते थे कि धर्म व्यक्ति का व्यक्तिगत मामला है, इसमें दूसरे का कोई दखल नहीं। न ही इसे राजनीति में घुसाना चाहिए, क्योंकि यह सरबत को मिलकर एक जगह काम नहीं करने देता। इसीलिए गदर पार्टी-जैसे आन्दोलन एकजुट व एकजान रहे, जिसमें सिख बढ़-चढ़कर फांसियों पर चढ़े और हिन्दू-मुसलमान भी पीछे नहीं रहे।

– भगतसिंह, 'साम्प्रदायिक दंगे और उनका इलाज' लेख के अंश, 'किरती' पत्रिका के जून 1928 अंक में प्रकाशित

मुद्रक, प्रकाशक और स्वामी कात्यायनी सिन्हा द्वारा 69 ए-1, बाबा का पुरवा, निशातगंज, लखनऊ-226006 से प्रकाशित एवं उन्हीं के द्वारा मल्टीमीडियम, 310, संजय गांधीपुरम, फ़ैज़ाबाद रोड, लखनऊ से मुद्रित। सम्पादक : सुखविन्दर, अभिनव ● सम्पादकीय पता : 69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006